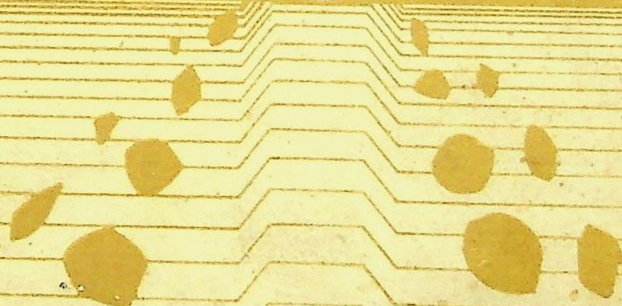
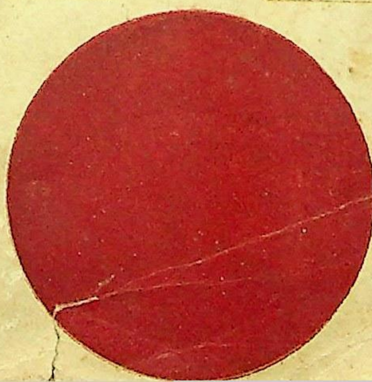
महापुरूषों की वापसी







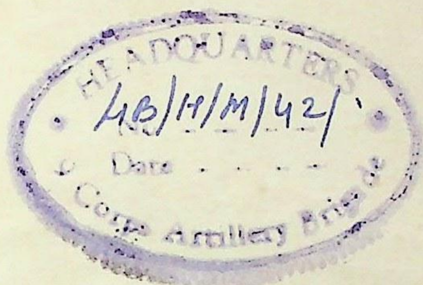
वल्लभ सिद्धार्थ

"बल्लभ सिद्धार्थ की कहानियाँ आज के आदमी की जिन्दगी में उभर रहे सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संत्रासों की कहानियाँ हैं... अपमान और आत्म-दमन के प्रति आक्रोश और विद्रोह ही आज के समूचे लेखन का स्वर है और यह स्वर बल्लभ सिद्धार्थ की कहानियों में भी बख़ूबी सुना जा सकता है...

बल्लभ सिद्धार्थ ने अपनी रचनाशीलता के लिए तल्ख़ी और बेबाक बयानी का सहारा लिया है। यही कारण है कि इनके पात्र अपने व्यवित को समय से जोड़ सके हैं और फ़ैसलाकुन स्थितियाँ पैदा करने की मानसिक भूमिका तैयार करते हैं...

बल्लभ सिद्धार्थ ने अपने लेखन के माध्यम से आज के आदमी की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक लड़ाई में समान रूप से हिस्सा लिया है। इन कहानियों का आंतरिक सत्य है— एक सार्थक लड़ाई की रचनात्मक तैयारी।..."

—कमलेश्वर


HEADQUARTERS
4B/H/M/42/
Date
Corps Artillery Brigade

महापुरुषों की वापसी

बल्लभ सिद्धार्थ

शब्दकार



प्रकाशक : शब्दकार
२२०३, गली डकौतान,
तुर्कमान गेट, दिल्ली-११०००६

मूल्य : नौ रुपये

प्रथम संस्करण : सितम्बर, १९७४

मुद्रक : भारती प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

आवरण : रिफ़ॉर्मा स्टुडियो, दिल्ली-११०००६

आवरण : परमहंस प्रेस, दिल्ली-११०००६

पुस्तक-बंध : खुराना बुक बाइंडिंग हाउस, दिल्ली-११०००६

चन्दा के लिए
कृतज्ञता सहित

बल्लभ सिद्धार्थ की कहानियाँ

बल्लभ सिद्धार्थ की कहानियाँ आज के आदमी की ज़िंदगी में उभर रहे सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संत्रासों की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ 'भोगे हुए यथार्थ' की व्यक्तिगत सीमाओं से निकलकर उस यथार्थ के व्यापक और अनुभवऽसिद्ध स्वरूप की समकालीन अर्थवन्ता को उजागर करती हैं और आम आदमी की तकलीफ़ों के प्रति लेखकीय ईमानदारी और संबद्धता को भी।

बल्लभ सिद्धार्थ की कहानियों में एक गहरी मेलोडी और कचोट है। ये समय में व्याप्त छल और बौद्धिक खोखलेपन की ही तसवीर नहीं खींचती, अपितु जड़ हो गए मूल्यों के नीचे दबी विकृत मानसिकता से भी परदा हटाती हैं। व्यक्तिगत अपमान और आत्म के दमन का एक लम्बा सिलसिला ही इन कहानियों का आधार है। इस अपमान और दमन के प्रति आक्रोश और विद्रोह ही आज के समूचे लेखन का स्वर है और यह स्वर बल्लभ सिद्धार्थ की इन कहानियों में बखूबी सुना जा सकता है।

आज की तेज़ रफ़्तार ज़िंदगी के अस्पष्ट और घुटन भरे माहौल में शिल्प या पच्चीकारी को बौद्धिक अय्याशी के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। आज का कथाकार जितना ही इससे बचता है, उतना ही सही ज़िंदगी के नज़दीक पहुँचता है। बल्लभ सिद्धार्थ ने अपनी कहानियों को इससे बचाया है, और अपनी रचनाशीलता के लिए तल्ख़ी और बेबाक-बयानी का सहारा लिया है। यही कारण है कि इनके पात्र अपने व्यक्ति को समय से जोड़ सके हैं और फ़ैसलाकुन स्थितियाँ पैदा करने की मानसिक भूमिका भी तैयार करते हैं।

कोई भी बात अपने अर्थों के कारण छोटी या बड़ी होती है और जब तक लेखक उन अर्थों से स्वयं को सम्बद्ध नहीं करता, तब तक रचनाशीलता बांझ स्थिति में ही रहती है। लेकिन बल्लभ की ये कहानियाँ सृजन के विस्फोटक दर्द को पहचानती हैं और यही पहचान इनके पात्रों में तकलीफ़ से जूझने का साहस और आत्मविश्वास पैदा करती हैं। इसी आत्मविश्वास के सहारे वे समय की ज़ंग लगी चेतना के एक-एक जोड़ पर चोट करते चले जाते हैं।

बल्लभ सिद्धार्थ ने अपने लेखन के माध्यम से आज के आदमी की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक लड़ाई में समान रूप से हिस्सा लिया है। इन कहानियों का आन्तरिक सत्य है एक सार्थक लड़ाई की रचनात्मक तैयारी।

रचनात्मकता और मानसिकता के निर्माण—दोनों ही स्तरों पर बल्लभ सिद्धार्थ की कहानियाँ सक्रिय और सजग हैं, बिना किसी नारेबाजी और दिखावटी हलचल के।

बम्बई
२४ अगस्त, १९७४

कमलेश्वर

कहानी-क्रम

महापुरुषों की वापसी

उस समय घर में किसी ने, यहाँ तक कि माँ ने, भी उस घटना को उतनी गंभीरता से नहीं लिया था। सबने रसोई के बग़ल की खपरैल वाली कोठरी के किवाड़ों के खुलने और बंद होने को कुछ कौतुक और ईर्ष्या से देखा था और इसे भी जित्ते की दूसरी तमाम ग़ैरज़िम्मेदार हरकतों की तरह मान कर आया-गया कर दिया था। ज़ीने की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए दादा रेलिंग की टेक लेकर एक जगह ठिठक कर खड़े हो गये थे और किवाड़ों की हिलती हुई साँकल की तरफ़ हिक़ारत से देखने लगे थे। माँ को खुटका हुआ था। वह नहीं चाहती थी कि सारा दिन शांति से गुज़र जाने के बाद, इस समय कोई अप्रिय घटना घटे। "जित्ते है···सुबह से कुछ खाया-पिया नहीं। मैं जाकर देखती हूँ ?" उन्होंने अटक-अटक कर कहना शुरू किया था। "तुम्हारा खाना ऊपर ही भेज दूँ ? ऐं ?" साफ़ था, वह स्थिति को बचा ले जाना चाहती थीं।

एक बार उनकी तरफ़ नाराज़ी से देखकर दादा ने मुँह फिरा लिया था। "मुझे भूख नहीं। ऐसे घर में भूख लग भी कैसे सकती है ?"

माँ के चहरे पर ढेर-सा अपराध-भाव घिर आया था। जैसे घर में आये दिन जो घटता रहता है, उसके लिए एक वही ज़िम्मेदार हों।

"अभी लड़का ही तो है। नया खून ! नौकरी जाने का सदमा उसे बर्दाश्त नहीं हो पा रहा है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा, देख लेना।" उन्होंने संभल-संभलकर कहा था।

मुँह की कड़वाहट को भीतर निगलते हुए दादा ने पेशानी की सलवटें सहलाई थीं। "लड़के और भी बहुत देखे हैं, बताये नहीं जाते। एक हमारे साहबज़ादे हैं..."

"खाना ऊपर ही भेज दूँ ?" माँ ने प्रसंग को सायास काट देना चाहा था।

"कहा नहीं, भूख नहीं मुझे।" दादा ने वितृष्णा से कहा था और कुर्ते की जेब से बीड़ी निकाल कर माचिस की तीली घिसी थी। तीली की झपकती रोशनी में उनका बेतरतीब मूँछों और झुर्रियों वाला चेहरा बेहद विकृत और भयावना लगा था ! कुछ देर तक वह वहीं खड़े-खड़े धुआँ खींचते और उगलते रहे थे। फिर सबकी तरफ़ घृणा से देखकर बड़बड़ाते हुए सीढ़ियाँ चढ़ने लगे थे। फिर उनके अटारी में पहुँचने पर स्विच ऑन करने की हल्की-सी आहट आई थी। खिड़की से आने वाली रोशनी का बेडौल चकत्ता रोज़ की तरह दालान की मेहराब से आ चिपका था।

कुछ देर बाद अपने कमरे से महेश ने आवाज़ दी थी, "दूध भेज देना माँ।"

सुधा, जो शायद इसी का इंतज़ार कर रही थी, दूध का गिलास लेकर चुपचाप चली गई थी। माँ ने अपने आपको बेहद असहाय, डरा हुआ महसूस किया था ! जैसे उन्हें किसी आसन्न ख़तरे के सामने अकेला छोड़कर सब एक के बाद एक उनके पास से अनुपस्थित होते जा रहे हों।

वह शुरू आसाढ़ की एक रात थी। दुपहर को घड़ी भर के लिए थोड़ी बूंदें गिरी थीं और फिर वही काँच की तरह चमकने वाली धूप निकल आई थी। अपनी-अपनी छतों पर मौसम की उमस के कारण पसीना-पसीना हुई देह को पंखा झलते हुए सब टोह लेते रहे थे कि अभी आँगन से किवाड़ों के खुलने की आहट आयेगी और जित्ते सिर झुकाये हुए सीढ़ियाँ चढ़कर तिखंडे पर बनी बरसाती में अपनी चारपाई पर जाकर लेट रहेंगे।

काफ़ी रात गये, सबके सो जाने पर, माँ दबे पाँव सीढ़ियाँ उतर कर नीचे आई थीं और धीमे-से कोठरी के किवाड़ थपथपाने लगी थीं। "जित्ते, किवाड़ खोल बेटा..."

भीतर से कोई आहट नहीं आई थी। कुछ देर तक उसी तरह खड़ी रहने के बाद माँ किवाड़ की दराज़ से आँख सटा कर भीतर देखने लगी थीं। ज़ीरो पावर की रोशनी में जित्ते खरहरी खाट पर अचेत पड़े हुए थे। उनकी दोनों बाहें सिरहाने वाली पाटी की तरफ़ फैली हुई थीं। पैजामे के दोनों पाँयचे सिकुड़ कर घुटनों तक लौटे हुए थे और पिंडलियों तथा हाथों पर डोरियों की तरह उभरी हुई नीली नसें रानों के बीच कमरे की मद्धिम रोशनी में साफ़ चमक रही थीं। साँस लेते और छोड़ते समय उनका गला कुएँ की गरारी की तरह देर तक खरखराता रहता था और पसीने से तर-बतर धँसी हुई छाती धौंकनी की तरह ऊपर-नीचे होती थी। उनके सिर के बाल सूखी हुई घास की तरह खड़े थे और बढ़ी हुई दाढ़ी के बावजूद आँखों

के गढ़हे काफ़ी गहरे और साफ़ दिखते थे। उनका मुँह खुला हुआ था। होठों के कोने से बहने वाली राल उनकी बनियान को भिगोती हुई फ़र्श पर एक गढ़े में पतली लेई की शक्ल में इकट्ठी होती जा रही थी।

"जित्ते..." माँ ने पहले से कुछ तेज़, मगर दबी हुई आवाज़ में पुकारा था।

छत से खाट के चरमराने और किसी के चलने की आहटें आयी थीं। माँ झपट कर ज़ीने के अंधेरे में दुबक कर खड़ी हो गयी थीं, जैसे चोरी करते हुए पकड़े जाने के डर से। कोई पानी पीने उठा था, शायद दादा! फिर चलने और खाट के चरमराने की आवाज़ आयी थी। माँ कुछ देर तक वहीं खड़ी-खड़ी टोह लेती रही थीं। फिर आँगन की बत्ती बुझा कर किवाडों के पास आ खड़ी हुई थीं।

जित्ते करवट छोड़कर चित्त लेट गये थे। उनके दोनों हाथ निरीह मुद्रा में खाट की दोनों पाटियों से झूल रहे थे। अधखुली पलकों से उनकी बड़ी-बड़ी पुतलियाँ काँच की गोलियों की तरह चमक रही थीं। मुँह अब भी खोह के मुहाने की तरह आधा खुला हुआ था और होठों से बहने वाली राल गर्दन से होती हुई बनियान को भिगो रही थी। माँ बेहद डर गयी थीं उन्हें लगा था, यह उनका कोख जाया बेटा न हो कर, कोई नितांत ग़ैर आदमी है। उन्हें महसूस हुआ था, जैसे उस उमस और सन्नाटे भरी रात में घर के हर अँधेरे कोने में कोई भयंकर षड्यंत्र रचा जा रहा हो। उनके वहाँ से हटते ही कहीं से कोई रोयेंदार ख़ूँख्वार हाथ हवा में प्रकट हो जायेगा और उसकी मज़बूत उँगलियाँ जित्ते की पतली गर्दन के ऊपर कसने लगेंगी! सब लोग अपनी-अपनी जगह इसी तरह बेहोश सोते रहेंगे!

"जित्ते...जित्ते...बेटा जित्ते...भइया..." उन्होंने थरथराती आवाज़ में फिर पुकारा था। उनका हाथ इस बुरी तरह से काँप रहा था, कि बहुत संभालने पर भी उँगलियों में फँसा हुआ दूध का गिलास तीन-चार बार छलक गया था। ऊँची-ऊँची दीवारों वाला वह आँगन उन्हें इतना सँकरा और भयावना इससे पहले कभी नहीं लगा।

"दूध पी ले बेटा...जित्ते..." कहने के लिए माँ को काफ़ी साहस जुटाना पड़ा था। दराज़ से फिर आँखें सटाकर उन्होंने तीन-चार बार गले का थूक भीतर घुटका था।

"जित्ते...भइया!" माँ ज़बरदस्ती अपनी चीख रोकने की कोशिश में कह गयी थीं। उसे ऐसा लगना शुरू हो गया था कि अब जित्ते कभी नहीं जागेंगे।

किसी को नहीं मालूम, माँ कितनी देर वहाँ सकते की हालत में खड़ी

रही थी। फिर हाथ का दूध तुलसी-घरुये में गिरा कर चुपचाप सीढ़ियाँ चढ़कर अपनी खाट पर आ लेटी थीं।

पिछवाड़े के विशाल पीपल के पत्ते हवा में सरसराते रहे थे। कृष्णपक्ष अष्टमी की फीकी चाँदनी दूर-दूर तक फैली मोहल्ले की इमारतों पर मैले चिथड़ों की तरह फड़फड़ाती रही थी। कुछ देर बाद गली के भैरोंजी वाले मंदिर के चबूतरे पर सोने वाला मरियल कुत्ता अजीब-से भयावने स्वर में रोने लगा था। माँ की इच्छा हुई थी कि पास में बेख़बर सोये हुए दादा को घुटने से पकड़ कर जगा दें। उनका मन जाने कैसा-कैसा हो रहा था ! पर तभी कुत्ता चुप हो गया था। बड़ी रात तक माँ अपनी चारपाई पर बेचैनी से करवटें बदलती रही थीं। आँखों में पड़ गये तिनके की तरह एक अबूझ-सा खटका सारी रात उनके मन में किरकिराता रहा था।

रिक्शे वाले को किराया चुका कर बैठक में घुसते ही जित्ते की नज़र दादा पर पड़ी थी। उन्हें उस तरह से अपनी ओर देखता पाकर वह थोड़े-से अव्यवस्थित हुए थे।

"रिट्रेंचमेंट···" उन्होंने संक्षेप में कहा था और सिर झुका कर पैर के अँगूठे से फ़र्श को कुरेदने लगे थे। इसके पहले भी वह अपने पत्र में लिख चुके थे कि छँटनी होने वाली है। वह उसकी लपेट में आ सकते हैं।

"हूँ···" दादा ने बीड़ी का एक लंबा कश खींच कर ढेर-सा धुआँ छोड़ा था और छाती थाम कर खाँसने लगे थे।

"अभी नोटिस तो इसी का मिला है। पर उम्मीद है कि जाड़ों तक राशनिंग फिर से लागू होगी, तो फिर से ले लिया जायेगा।"

"अच्छा मज़ाक हो रहा है ! सरकार है कि दिल्लगी···" दादा तल्ख स्वर में बोले थे। मगर उनकी मुद्रा से साफ़ लग रहा था कि वह इसके लिए सिर्फ़ जित्ते को ज़िम्मेदार मान रहे हैं।

बात ये है कि अब संविद का शासन आ गया है। संविद ने पहले से ही घोषणा कर रखी थी कि राशनिंग बंद कर देंगे। कुछ समय बाद ज़िलाबंदी भी समाप्त हो रही है। कुछ और लोगों की छँटनी होगी···जित्ते सफ़ाई देने के अंदाज़ में बोले थे।

"ऐसी-तैसी कांग्रेस की और संविद की···" दादा झल्लाकर बोले थे और बीड़ी का कश खींचने के लिए तख्त पर उकड़ूँ हो गये थे। "सबको निकाल दिया जायेगा ?"

"रेगूलरों के अलावा किसी को भी निकाला जा सकता है। कुछ लोग रहेंगे भी। पर उसके लिए सोर्स की ज़रूरत थी। मेरे पास कौन-सा सोर्स

था ?" जित्ते ने आँखों पर चश्मे को ठीक से जमा कर आस्तीन से चेहरे का पसीना पोंछा था।

"हम नहीं मानते। अगर अपने भीतर क़ाबलियत है, तो सोर्स-ओर्स की कोई ज़रूरत नहीं।"

"बात ये है कि जो नया आर० सी० एफ० आया है न, वह शेड्यूल्ड कास्ट का है। खाद्य-मंत्री का अपना आदमी। वह शेड्यूल्ड कास्ट वालों के अलावा सबके पीछे पड़ा है। सबको निकाल रहा है।" जित्ते ने सफ़ाई दी थी।

मगर दादा को जित्ते की छँटनी के लिए दुनिया का हर कारण नाकाफ़ी लग रहा था। "चलो ठीक है, जो भी हुआ। हुँ !" दादा ने विद्रूप से कहा था और आँखों पर चश्मा चढ़ाकर अधूरा जासूसी उपन्यास उठा लिया था।

जित्ते अपना सूटकेस उठाकर चुपचाप भीतर निकल गये थे। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर अपने कमरे में जा पहुँचे थे और खाट पर निढाल बैठकर सिगरेट पीने लगे थे।

कुछ देर बाद नीचे से मुन्नी और मनोज की चौके में जाने की आवाज़ें आई थीं। फिर खाना तैयार होने में देरी होने पर सुमति की माँ से झगड़ पड़ने की।

सुबह की धूप दीवाल से उतर कर आँगन के तुलसी-बिरवे तक आ पहुँची थी। जित्ते उठे थे और अंडरवियर-बनियान पहन कर झाड़ू से कमरा साफ़ करने लगे थे। इधर-उधर पड़े फटे-पुराने कपड़ों की पोटली बाँध कर रसोई के बग़ल वाली कोठरी की अलगनी से टाँग आये थे। जब वह तीसरी बार कूड़े से भरा हुआ कनस्तर लेकर नीचे उतर रहे थे, तो माँ ने टोक ही दिया था, "अरे जित्ते, तू काहे को मेहनत कर रहा है बेटा ! कल किसी मज़दूर को लगा देते, तो हो जाता कमरा साफ़।" कहते-कहते माँ ने सुमति और सुधा की तरफ़ देखा था। उन्हें लगा था, उनका स्वर काफ़ी बनावटी और औपचारिक हो गया है।

"कोई बात नहीं। कमरा गंदा पड़ा था। काम था ही कित्ता !" एक दम सामने की तरफ़ देखते हुए जित्ते ने जैसे खुद को ही सुनाने के लिए कह दिया था।

दालान में गेहूँ बीनती सुधा ने सुमति की तरफ़ व्यंग्य से देखा था। सलाइयों पर तेज़ी से पुलोवर बुनते सुमति के हाथ पल-भर के लिए ठिठके थे और फिर उसी तेज़ी से चलने लगे थे।

"सारी बस्ती में मज़दूरों का अकाल पड़ गया है, जो लाला को ये काम

अपने हाथ से करना पड़ा !" सुधा ने माँ को सुनाकर कहा था और होंठों को व्यंग्य से फैला दिया था।

बिना कोई उत्तर दिये सुमति उसी तरह सलाइयाँ चलाती रही थी। लौट कर जित्ते खाट पर नंगे बदन निढाल पड़ रहे थे। जाने कितनी भूली-बिसरी बातें दिमाग़ में आने और गुज़रने लगी थीं। इतने दिनों बाद अपने ही घर में अपनी स्थिति उन्हें काफ़ी अजीब लग रही थी। लग रहा था, जैसे उनके आने से कोई भी खुश नहीं है और उन्हें कोई भी स्वीकार नहीं कर पा रहा है। उसे परिवार को एक साथ बाँधकर रखने वाला कोई अदृश्य सूत्र सहसा ढीला पड़ गया हो और एक-दूसरे से पूरी तरह से टूटने की अनिवार्य प्रक्रिया से गुज़र रहे हों। उन्हें किसी से शिकायत नहीं होनी चाहिए, क्योंकि सबके सामने सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न खुद के निर्वाह का है। जित्ते ने सोचा था और पथराई आँखों से सामने की दीवार पर लौटती हुई धूप को देखने लगे थे।

सुबह चाय के वक़्त किसी को ठीक-ठीक अंदाज़ नहीं हो पा रहा था कि जित्ते इस समय अपने कमरे में क्या कर रहे होंगे ? पता नहीं चलता था, दरवाज़ा खुला है, या बंद। रात होते ही जित्ते के कमरे की बत्ती गुल हो गयी थी। पूरे घर के लिए अब तक ख़ाली पड़ा रहने वाला वह कमरा, एक कमरा, न होकर, एक उपस्थिति बन गया था। कुछ-कुछ ख़ौफ़नाक और रहस्यमय। आधी रात के क़रीब जब जब आँधी चली और उनकी खिड़की के पल्ले हवा में फड़फड़ाने लगे, तो खिंचे हुए सन्नाटे में उनके खुलने और बंद होने की आवाज़ें काफ़ी मनहूस और डरावनी लगी थीं। कुछ देर बाद हारकर माँ ने आवाज़ दी थी, "खिड़की बंद कर ले जित्ते !"

एक बार और तेज़ आवाज़ हुई थी। खिड़की बंद किये जाने और भीतर से सिटकनी लगाये जाने की। फिर आँधी थमी थी और दीवार पर नाचती हुई पिछवाड़े के पीपल की परछाइयाँ स्थिर हो गयी थीं। माँ छत से मटमैली चाँदनी में गुमसुम खड़े मकानों को देखती रही थीं। जित्ते के कमरे से पंखा चलने की भरभराहट आने लगी थी। माँ को वह भरभराहट, कोई आवाज़ न लग कर, कोई ठोस और स्थूल चीज़ महसूस हुई थी, जो उनके और जित्ते के बीच के फ़ासले में ठसाठस भर गयी थी।

"दादा के लिए चाय ऊपर ही भिजवा दो," सुमति ने सुझाया।

"तू दे आ मुन्नी," माँ ने डरते-डरते कहा था।

मुन्नी कप लेकर ऊपर गयी थी और लौट आयी थी।

चाय पीकर जित्ते धुला हुआ कुरता-पाजामा पहन कर बाहर निकल गये थे और कुछ देर बाद पड़ोस से ढेर सारे अखबारों और पत्रिकाओं के

साथ वापस लौट आये थे। माँ ने दोपहर का खाना भी ऊपर ही भिजवा दिया था।

शाम को जित्ते ने दादा को बताया था कि वह प्रदेश के खाद्य-मंत्री से लेकर राष्ट्रपति तक को अपनी छँटनी के ख़िलाफ़ लिख रहे हैं। उन लोगों से पत्र-व्यवहार कर रहे हैं, जिन्हें उनके साथ नाजायज़ तरीक़े से निकाल दिया गया है। ज़रूरत हुई, तो चंदा इकट्ठा कर हाईकोर्ट में रिट दायर करेंगे। संगठित होकर आंदोलन करेंगे।

"अभी बच्चे हो !" दादा हिक़ारत से बोले थे, "अरे, सरकार ने आज तक किसी की सुनी है, जो तुम्हारी सुनेगी ? सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं !"

"सुनेगी कैसे नहीं ? हाईकोर्ट से लड़कर इन्साफ़ लेंगे। एजीटेशन करेंगे।" जित्ते तैश से बोले थे।

"मिल चुका इन्साफ़ ! वही क़ानून बनाने वाले, वही तोड़ने वाले।"

जित्ते निरुत्साहित हुए थे। भरे स्वर में बोले थे, 'अगर आर० एफ़० सी० नहीं मानता, तो केस को कोर्ट में ले ही जाना पड़ेगा। एक-दो लोगों का मामला होता, तो कोई बात नहीं। डेढ़-सौ लोगों का मामला है। कहाँ जायेंगे इतने लोग ? सरकार को सुनना पड़ेगा।"

"तो देख लो। वह भी करके देख लो !" दादा उनकी नासमझी पर तरस खाते हुए बोले थे, "तुम सोचते हो, मैं पढ़ा-लिखा नहीं, तो कुछ समझता ही नहीं। सरकार में किसे फ़ुरसत है कि देखे, कौन मर रहा है ? सब मिनिस्टरों को अपनी-अपनी कुर्सियाँ संभाले रहने की चिंता सताये जा रही है। हाँ, अँगरेज़ों का राज होता, तो कोई बात भी थी।"

किसी को पता नहीं, जित्ते अपने कमरे में घुसे-घुसे क्या करते रहते हैं ? दोपहर को वह जिस तरह तीन-चार अखबारों के साथ लौटते थे और जिस अधीरता से डाक की प्रतीक्षा किया करते थे, उससे लगता था, उन्होंने कई जगह नौकरी के लिए 'एप्लाई' कर रखा है। पर जैसे सभी नौकरियों के दरवाज़े उनके लिए बंद हो चुके थे और अब वह अकसर बहुत उदास और उखड़े-उखड़े रहने लगे थे। उन्हें समय पर नहाने और खाना खाने का ध्यान नहीं रहता था। हर वक़्त कुछ-न-कुछ सोचते हुए-से बने रहते थे।

एक दिन चाय पीने के बाद वह बाहर गये, तो माँ चुपके से किवाड़ खोल कर उनके कमरे में घुसी थीं और जासूसी तरीक़े से हर चीज़ को देखने-परखने लगी थीं। कच्ची दीवारों वाले कमरे में खिड़की से सटी हुई एक मेज़ और एक ज़ंग खाई हुई कुर्सी पड़ी थी। कोने में दो ईंटों पर गत्ते

का सूटकेस रखा हुआ था। खोलने पर उसमें दो जोड़ी धुले हुए कपड़े, ढाई-तीन रुपये की रेज़गारी, अखबारों की कतरनें और एक डोरे में बँधी हुई पुराने पत्रों की गड्डी दिखी थी। कपड़ों के नीचे एक फ़ाइल, किताब और लाल जिल्द वाली एक डायरी दिखी थी। माँ खिड़की के पास आकर जल्दी-जल्दी डायरी के पन्ने पलटने लगी थीं। पन्ने काफ़ी घसीट अक्षरों से भरे हुए थे। रोज़ का खर्च, घटनाओं और इधर-उधर से आने वाले पत्रों का हवाला था। पन्ने उलटती हुई माँ एक जगह अटक कर रह गयीं थीं। लिखा था: 'संघर्ष ही जीवन है। संघर्ष ? विल पावर ! विल पावर ! सोशल जस्टिस सिर्फ़ समाजवादी व्यवस्था में संभव है।'

'मार्क्स, लेनिन, गांधी (लिख कर काट दिया गया), चे ग्वेवारा, कास्त्रो !' फिर कुछ किताबों के नाम लिखे हुए थे।

दस स्पेक जरथस्त्र—नीतशे

पावर्टी ऑफ़ फ़िलासफ़ी—मार्क्स

माई एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ—गांधी (लिखकर काट दिया गया)। इंपैरेटिव्स ऑफ़ इकानॉमिक्स डिटरमिन द कोर्स ऑफ़ हिस्ट्री! पावर्टी! भूख!

"आइ किल्ड हिम बिकॉज़ वी वेयर टू मैनी !"

हिस्ट्री इज़ ए डेड थिंग—सार्त्र ! भूख ! हिस्ट्री !! हिस्ट्री !

डॉ० ज़िवागो—पास्तरनाक !

ब्रेव न्यू वर्ल्ड—हक्सले !

"हैप्पी आर दे हू सफ़र फ़ॉर देयर सिन्स इन दिस वर्ल्ड"—नानसेंस !

"आन ह्वाट कंडीशन मे आई लीड ए लाइफ़ ऑफ़ कांटेंटमेंट ?"

"ऑन कंडीशन दैट यू सीज़ टु थिंक"

कांग्रेस इज़ नेशन्स ऐनेमी नंबर वन—लोहिया

देयर आर मोर थिंग्स ऑन हैवन एण्ड अर्थ, दैन थॉट ऑफ़ इन योर फिलोसौफ़ी—होरेशियो !

लोहिया = वर्गहीन समाज + समान सुविधाएँ + सोशल जस्टिस

काँग्रेस = करप्शन + नेपोटिज़्म + नेतागिरी।

गैलीलियो, सुकरात, ब्रूनो, गांधी (काट दिया), लोहिया, कैनेडी।

किंग—प्रणाम ! प्रणाम !

आवर नेशन इज़ डाइंग ए स्लो डेथ ! डेथ—अंधकार—अंधकार।

अगले पन्ने पर एक अतुकांत कविता लिखी हुई थी :

दिन की आवाज़ें
फुटपाथों पर भीगे पन्नों के नीचे दफ़न हो गई हैं
हवाओं में बर्फ़ की तरह धुली हुई ठंड

धुएँ की शक्ल में हर चीज़ पर
परत-दर-परत जम रही है !
और एक अंतिम खौफ़नाक परिणति के लिए
क़ब्रगाहों के सन्नाटे की भूमिका रच रही है !
अधिकांश मकान सो चुके हैं
या भय से काँपते हुए
रोशनी की भेदिया निगाहों से
पेड़ों के फुनगियों को
किसी पूर्वनिश्चित संकेत में
हिलते हुए देख रहे हैं !
लैंप-पोस्टों की धुँधली रोशनियों में लिपटा हुआ
बीमार शहर किसी षड्यंत्र का इंतज़ार कर रहा है !
और...
लोग ऊँघ रहे हैं...सो रहे हैं !

सीढ़ियों पर आहट हुई थी। डायरी को सूटकेस में रख कर माँ जल्दी-जल्दी झाड़ू से कमरा साफ़ करने लगी थीं।

"कौन ?" जित्ते ने दरवाज़े से ही पूछा था।

"मैं हूँ रे..." उनसे निगाहें मिलते ही माँ को अपराध-बोध हुआ था। "सोचा, कमरा गंदा पड़ा होगा, साफ़ कर दूँ !"

हाथ का अख़बार, मेज़ पर रख कर जित्ते उनकी तरफ़ मुख़ातिब हुए थे। "तुम रहने दो, झाड़ू मैं लगा लूँगा।" साफ़ था, उन्हें माँ का उस तरह अपने कमरे में चला आना पसन्द नहीं आया था।

माँ चुपचाप सीढ़ियों पर आ गई थीं। जित्ते के बारे में सोचते हुए उनका मन अजीब-सी दहशत से भर गया था। लग रहा था, जैसे जित्ते किसी तिलिस्मी अजगर के भयानक जबड़ों में समाते जा रहे हों और वह उन्हें रोक सकने में एकदम असमर्थ हों।

एक दिन एम० एल० ए० को साथ लेकर जित्ते लखनऊ गये थे। लौटने पर कुछ आश्वस्त दीखे थे।

"जब तक कोई फ़ैसला नहीं हो जाता, मेरे साथ तहसील चला करो। कहने को अर्ज़ीनवीसी है पर आठ-दस रुपया बैठते ही कमाने लगोगे। तहसीलदार साहब से लेकर रजिस्ट्रार साहब तक सबसे अपने सम्बन्ध हैं। कोई भी दिक़्क़त नहीं आयेगी।" एक दिन दादा ने कहा था।

"अर्ज़ीनवीसी...?"

दादा को बुरा लगा था। चिढ़ कर बोले थे, "हाँ-हाँ, यह काम भी आदमी ही करते हैं। इसी की कमाई से तुम्हें, महेश और सुमति को बी० ए०, एम० ए० तक पढाया और इसी से अब तक घर का खर्च ढकेल रहा हूँ—तुम्हारा पेट भर रहा हूँ !"

"मुझसे नहीं होगा," जित्ते ने निर्णयात्मक स्वर में कहा था।

"हाँ, हाँ, तुमसे कैसे होगा ? तुम यह काम करने लगोगे तो बुलबुलें निकाल कर, मुँह चिकना कर, टैरीलिन की पैंट पहन कर कैसे घूम पाओगे ? शरम नहीं आयेगी !"

जित्ते ने कोई उत्तर नहीं दिया था। दादा बड़बड़ाते हुए बाहर निकल गये थे।

दूसरे दिन डाकिया एक ख़ाकी रंग का सरकारी लिफ़ाफ़ा दे गया था। डिप्टी डाइरेक्टर के यहाँ से जित्ते की नौकरी ख़त्म हो जाने का अंतिम आदेश, किसी को पता नहीं, जित्ते दिन भर अपने कमरे को भीतर से बन्द किये क्या करते रहे थे ? शाम को जब वह बाहर जाने के लिए आँगन से गुज़रे, तो उनकी पुतलियाँ चढ़ी हुई थीं। सिर के बाल बिखरे हुए थे। लगता था, जैसे महीनों की बीमारी के बाद उठे हों। वह माँ की तरफ़ बग़ैर पलकें झपकाये देखते रहे थे। फिर बैठक से उनके और दादा के झगड़ने की की तेज़ आवाज़ें आने लगी थीं।

उस वक़्त झुटपुटा था। माँ आँगन से चीखें मार-मार चिल्लाने लगी थीं। उस समय भी, जब घर के सब लोग घबरा कर उनके गिर्द इकट्ठा हो गये, वे आश्वस्त नहीं हो पाई थीं और उसी तरह दाईं हथेली को तेज़ी से हिलाती, पैरों को ज़मीन से पटकती हुए रोये जा रही थीं।

"क्या तमाशा बना रखा है.. ?" अधिक ज़ब्त न कर पाने पर दादा ने डपट दिया था। तभी उन्हें माँ की उँगलियों में दबा हुआ कागज़ दिख गया था।

"हूँ..." कागज़ पढ़ते-पढ़ते दादा का चेहरा घृणा से भर गया था। माँ उनके चेहरे की तरफ़ देखने लगी थीं।

"जैसे हमारे यहाँ रहकर हम पर कोई एहसान कर रहे हों। कर लें खुदकशी। समझते हैं सारा राज-पाट उनके बिना डूब जायेगा ! देखते हैं, कैसे खुदकशी करने वाले हैं...! बहुत देखे हैं ऐसे...!" दादा ने फ़र्श पर थूक दिया था। थूक के दो-तीन बड़े-बड़े छींटे उनकी मूँछों पर जम गये थे। उनका निचला होंठ तेज़ी से काँपने लगा था। लगता था, जैसे वह अपनी सारी दृढ़ता के बावजूद भीतर से काफ़ी डरे हुए हैं।

"इसका दिमाग़ ख़राब हो गया है !" महेश ने बेहद ऊब भरे स्वर में

कहा था और सुधा की तरफ़ देखा था।

सुमति अपने बालों को सिर पर जमाती हुई सीढ़ियाँ चढ़ने लगी थी। उसे टर्मिनल की कापियाँ जाँचनी थीं। उसे कोफ़्त हो रही थी कि अब कापियाँ देखने का मूड बनेगा भी या नहीं।

कोठरी के किवाड़ खुले हुए थे। अन्दर से दुर्गन्ध और सीली गर्मी का भभूका निकल रहा था। चारपाई को उठा कर दीवार से टिका दिया था। एक खूँटे पर जित्ते की मैली बुशर्ट झूल रही थी। ज़ीरो-पावर वाला बल्ब अभी भी जल रहा था।

"जाने क्यों भीतर घुसते ही सबसे पहले मेरा हाथ उसकी बुशर्ट की जेब में गया। देखूँ तो यह पर्चा..." कहती-कहती माँ फिर आँखों पर उँगलियाँ रख कर सिसकने लगी थीं।

"पागल हुई हो," दादा को डर हुआ था कि उनकी आवाज़ को सुनकर पड़ोस वाले न आ धमकें। "देख लेना, शाम तक अपने-आप लौट आयेगा। ठोकरें खा कर।"

"कहिये तो थाने में रिपोर्ट करा आयें।" महेश ने कहा था, तो सुधा ने आँखों से बरज दिया था, तुम्हें क्या पड़ी है !"

"रिपोर्ट...? एक और आफ़त अपने ऊपर बुलाने का शौक़ चर्राया हो, तो ज़रूर कर आओ रिपोर्ट, वैसे होना कुछ नहीं। देख लेना..." दादा ने ठंडी साँस ली थी।

सभी को जित्ते पर क्रोध आ रहा था। उनका इस हद तक ग़ैर-ज़िम्मेदार होना किसी को भी सहन नहीं हो पा रहा था।। जित्ते के लौट आने वाले दिन से ही घर का वातावरण तनावपूर्ण हो गया था और सबको जित्ते की उपस्थिति असहनीय लगने लगी थी। उनसे सभी निजात पाना चाहते थे। मगर उनके इस तरीक़े से सहसा अनुपस्थित हो जाने को कोई भी सहज ढंग से नहीं ले पा रहा था। कुछ देर बाद उन्हें ऐसा लगा था कि वर्तमान परिस्थिति में 'निजात' उन्हें सिर्फ़ इसी ढंग से मिल सकती थी, हालाँकि वे इस बात को एक-दूसरे के सामने स्वीकार नहीं कर पा रहे थे।

चाय पीकर माँ के सामने प्याला खिसकाते हुए महेश ने कह ही दिया था, "अब वह नहीं लौटने का।" उन्होंने समर्थन के लिए सबके चेहरे देखे थे, फिर आश्वस्त होकर बोले थे, "देख लेना, दादा कहते ज़रूर हैं, मगर मैं जानता हूँ, वह अब नहीं आयेगा।" आखिरी वाक्य कहते समय महेश के चेहरे पर अपराध-भाव फैल गया था, जैसे कोई चोरी करते हुए पकड़ लिया गया हो। किसी ने कुछ नहीं कहा था। माँ ने अपनी दोनों हथेलियाँ ठुड्डी से लगा ली थीं और दीवार की तरफ़ अपलक देखने लगी थीं।

फिर महेश रोज़ की तरह अपना काला कोट पहनकर नीचे उतरे थे और साइकिल के कैरियर में फ़ाइलें दबाकर कचहरी चले गए थे। जाते वक़्त सुधा उन्हें काफ़ी डरी हुई लगी थी।

"आज जल्दी लौट आना। जाने कैसा लग रहा है!" सुधा ने कहा था।

"जल्दी लौट आऊँगा, इस नालायक ने जीना हराम कर रखा है! देखो तो, क्या सूझी साले को!"

दादा तहसील नहीं गये थे। बैठक के तख़्त पर बैठे हुए चुपचाप कोई जासूसी उपन्यास पढ़ने लगे थे। कुछ देर बाद बन-सँवरकर सुमति अपने कमरे से बाहर निकली थी और हाल की घटना से एकदम असंपृक्त हुई-सी कॉलेज चली गई थी।

दोपहर तक सुमति और महेश लौट आये थे। बैठक से कोई आहट आती थी, तो सब के कान खड़े हो जाते थे। दादा दो बार भीतर आये थे। एक बार पानी पीने के लिए, दूसरी बार माँ से कोई ज़रूरी बात पूछने के लिए। उनके आते ही हम सब उन्हें घेरकर खड़े हो गये थे और एक-दूसरे को आत्मीय और टटोलने वाली नज़रों से देखने लगे थे।

इससे पहले इस घर में ऐसा कभी नहीं हुआ था। पिछली सर्दियों में दादा बीमार हुए थे, तो दो माह तक बैठक में पड़े रहे थे। माँ के अलावा किसी को ठीक से महसूस भी नहीं हुआ कि कोई बीमार है। कांग्रेसी मंत्री को काला झंडा दिखाने के फलस्वरूप महेश एक हफ़्ते तक जेल में बन्द रहे, तो उसे सिर्फ़ सुधा ने महसूस किया था।

पिछले सत्र के बाद सुमति को कॉलेज की मैनेजिंग कमेटी की तरफ़ से नोटिस मिला था, तो उस स्थिति को सिर्फ़ सुमति ने अकेले-अकेले झेला था। बाक़ी लोग उसी तरह असंपृक्त रहे थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

आज पहली बार सबने अपने को एक-दूसरे के साथ इतना जुड़ा हुआ महसूस किया था। उन्हें लग रहा था कि वे एक साथ किसी डरावनी और तंग अँधेरी सुरंग से होकर गुज़र रहे हैं।

उनकी आत्महत्या वाली बात को सबने अपने भीतरी आग्रहों के कारण इतना सच मान लिया था कि अब उनके जीते-जागते लौटने की संभावना सबको असहनीयता की हद तक अकल्पनीय लगने लगी थी। उन्हें इन्तज़ार था, जित्ते का नहीं, उनकी मौत का समाचार लाने वाले किसी पुलिस वाले, परिचित या राहगीर का। इन्तज़ार उन्हें असह्य होता जा रहा था, क्योंकि द्विविधा की स्थिति से उबरकर वे अब शीघ्र एक साथ फ़ैसला कर लेना

चाहते थे कि अब क्या हो ? एक खूँख्वार छद्म-इच्छा, एक अधीर प्रतीक्षा ने उन सबको एक अदृश्य सूत्र में बाँध दिया था। और भीतर-ही-भीतर यह नई खोज उन्हें हलकी-सी खुशी दे रही थी।

सहसा मुन्नी और नीतू बदहवास-से सीढ़ियाँ उतरते दिखे थे। सब उनकी तरफ़ देखने लगे थे।

"क्या है ?" महेश ने डाँटने के स्वर में पूछा था। सबसे ज़्यादा कमज़ोर वही दीखे थे।

"वो...वो..." नीतू ने तिखंडे की बरसाती की तरफ़ हाथ उठाकर नाक पोंछ ली थी। उसकी आँखें भय से फैली हुई थीं।

"हाँ, हाँ, बोलता क्यों नहीं ?" महेश को लग रहा था, वह अकारण ही काफ़ी असहज हो उठे हैं।

"भूत...ऊपर भूत है !" नीतू हकलाकर बोला था।

"हिश्श..." सुमति ने कहा था।

"चलो, देखो ऊपर..." मुन्नी उसका हाथ पकड़कर आग्रह से खींचने लगी थी।

सबसे आगे महेश थे। माँ सबसे पीछे छूट गयी थीं। सीढ़ियाँ चढ़ते समय वह बुरी तरह हाँफने लगी थीं।

"वो देखो..." नीतू ने महेश के घुटनों में छिपते हुए बरसाती की तरफ़ उँगली उठा दी थी।

एक खरहरी खाट बरसाती में आड़ी खड़ी हुई थी। नीम से छन-छनकर आने वाली धूप में चारपाई के सिरहाने की तरफ़ निकले हुए बड़े-बड़े नाखूनों वाले दो गंदे पैर नज़र आये थे। कुछ देर तक प्रत्यक्ष को नकारने की मुद्रा में सब-के-सब अवाक् एक-दूसरे के चेहरे देखते रहे थे।

"जित्ते हैं...?" काफ़ी देर बाद गले में अटके शब्दों को महेश ने बाहर निकाल दिया था और भय से आँखें फैलाकर सबकी तरफ़ देखने लगे थे।

सारी घटना एकदम नामुमकिन लग रही थी, जैसे एक बेहद खौफ़नाक स्थिति ने उन्हें बिलकुल असावधानी की हालत में पकड़ लिया हो। माँ दन्ती भींचकर धीमे-धीमे रोने लगी थीं। दरअसल वह रोना तो चीख-चीखकर चाहती थीं, मगर डर रही थीं। उनके शुरू होते ही सुधा और सुमति का साहस हिल गया था और वे उसी तरह, दाँत भींचकर रोने लगी थीं। ख़ौफ़ से !

"क्या करें ! डाक्टर को बुलायें ?" महेश किसी तरह से वहाँ से

खिसक जाना चाहते थे।

"पहले ठीक से देख तो लो !" दादा ने डपटने के स्वर में कहा था।

सब-के-सब दूसरे के आगे बढ़ने के इन्तज़ार में अपनी जगह पर खड़े रहे थे। काफ़ी देर तक जब सब उसी तरह खड़े रहे थे, तो महेश ने फिर कहा था, "अब क्या हो ?" उनका हाथ बार-बार पैंट की जेब को टटोल-कर लौट आता था। उन्हें गुस्सा आ रहा था कि वह दादा के सामने सिग-रेट नहीं पी सकते।

"हो क्या, पहले लाश को उठाकर नीचे ले चलो।" दादा को घबराहट हो रही थी कि लोगों को इसकी सूचना किस तरह और किस रूप में देनी चाहिए, क्योंकि एक बार रोकर चुप हो जाने के बाद नीचे पहुँचकर औरतों का फिर रोने लग जाना उन्हें काफ़ी उलझन का काम लग रहा था।

"ऊँहूँ ! पहले पुलिस में रिपोर्ट करना ठीक रहेगा," महेश ने फिर कहा था।

दादा नाराज़ी से उसकी तरफ़ देखने लगे थे।

"या कहिये तो डाक्टर को बुला लाऊँ ?" महेश हकलाकर बोले थे।

सहसा दादा कोई भूली बात याद आ जाने के अंदाज़ में माँ की तरफ़ मुड़े थे, "वो कागज़ कहाँ है...?"

"कागज़···?" माँ एकदम बौखला गयी थीं। "बिलकुल याद नहीं आता, कहाँ गया। कहीं कूड़े के साथ न झड़ गया हो।"

"अब मरे !" दादा ने दाँत भीचकर माँ की तरफ़ देखा था और आँखें मूँदकर मुट्ठियों से माथे को ठोका था। "सब-के-सब जेल जायेंगे ! ऐसी मूरख नहीं देखी !"

माँ घबराकर फिर रोने लगी थीं।

"कूड़े में देखो," महेश बोले थे।

सुमति और सुधा नीचे भागी गई थीं।

बरसाती में हवा के झोंकों के साथ अखबार के फड़फड़ाने की तेज़ आवाज़ आई थी। सब चौकन्ने होकर उस तरफ़ देखने लगे थे। तभी हाँफती हुई सुमति आ खड़ी हुई थी। "ये लो। कूड़े में नहीं, माँ की तम्बाकू की डिबिया में पड़ा था।"

"हे राम..." माँ ने राहत की लम्बी साँस खींची थी। "जिन्दगी भर के लिए कलंक लग जाता !" और फिर आँखों पर उँगलियाँ रखकर सिस-कने लगी थीं।

बरसाती में फिर आहट हुई थी—किताब के गिरने की-सी।

"बिल्ली होगी।" दादा आगे बढ़ गये थे। उनके पीछे महेश।

सहसा चारपाई के पीछे दिखने वाले पैरों में जुंबिश हुई थी। फिर जित्ते का पूरा चेहरा प्रकट हो गया था।

"जित्ते ?" महेश और दादा के मुँह से बेसाख्ता निकल गया था, जैसे उन्होंने सचमुच ही कोई भूत देख लिया हो।

"पट्टेदार पैजामा और बनियान पहने हुए जित्ते धीरे-धीरे छत की तरफ़ बढ़ने लगे थे। दोनों बच्चे चीखकर सुधा के पैरों से लिपट गये थे।

"अजीब आदमी हो जी तुम !" दादा अपने पर ज़्यादा क़ाबू नहीं रख सके थे।

जित्ते किसी को भी न पहचानने के भाव से बारी-बारी सबके चेहरों की तरफ़ देखने लगे थे। उनका चेहरा एकदम कोरा और प्रतिक्रियाहीन था। जैसे कुछ हुआ ही न हो।

"मैं कहता हूँ, यह तमाशा किसलिए किया तुमने ?" महेश ने तैश से आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया था। "बता ! बता साले...!" और इसके पहले कि कोई रोक सके, महेश ने उनकी गरदन पर हाथ रख कर एक ऐसा धक्का दिया था जित्ते लड़खड़ाते हुए फ़र्श पर औंधे मुँह जा गिरे थे।

"हें, हें, क्या लड़कपन करते हो !" दादा ने झपटकर जित्ते को सीधा किया था, तो उनके होंठ से बेतहाशा खून बह रहा था। वह एकदम पथराई आँखों से कभी महेश, कभी दादा का चेहरा देखने लगे थे—कुछ भी न समझने के भाव से।

"जित्ते...जित्ते..." दादा ने कहा था और महेश की तरफ़ देखा था।

जित्ते लड़खड़ाते हुए ज़ीने की तरफ बढ़ने लगे थे। माँ बहुत रोकने पर भी चीखें मारकर रोने लगी थीं।

सहसा जित्ते रुककर खड़े हो गये थे।

"क्या हो गया तुम्हें ?" महेश ने उनकी पीठ पर डरते-डरते हाथ फेरते हुए कहा था।

"कम, कम ऑन डॉक्टर मार्टिन लूथर किंग, एण्ड किल मी। वी आर टू मैनी इन दिस सोशलिस्ट पैटर्न ऑफ़ इंडिया।" जित्ते महेश की तरफ़ देखते हुए बड़बड़ाये थे।

"जित्ते···?"

"गो, एंड काल द घोस्ट्स ऑफ़ मिस्टर मार्क्स एंड मिस्टर गांधी एंड मिस्टर क्राइस्ट द डैम्ड बॉय ऑफ़ द वर्जिन वोमन टु सी दिस वर्ल्ड ऑफ़ आवर्स। दिस लिविंग इनफ़रनो ऑफ़ दाँते। दिस होली लैंड कॉल्ड

आवर इंडिया। जित्ते ने रुककर, एक बार चेहरा घुमा कर सबकी तरफ़ देखा था।

"जित्ते बेटा..." दादा को लग रहा था, अब वह चीख कर रो पड़ेंगे।

"टू हैल विद आल ऑफ़ यू। टू द हैल—द ओनली होप ऑफ़ सोलेस। द पैराडाइज़ ऑफ़ आल ह्यूमन क्रिमिनल्स।"

"दिमाग़ ख़राब हो गया है।" महेश ने फुसफुसा कर कहा था।

"गो एण्ड इनफ़ार्म ब्रूट्स द ग्रेट ऑफ़ आवर डेंजरस एंबीशन टू लिव ऐज़ मैन इन दिस ग्रेट इनफ़रनो ऑफ़ आवर्स···" जित्ते फिर बड़बड़ाये थे।

"अब...?" महेश ने फिर कहा था।

एक दूसरे का चेहरा पढ़ने की कोशिश करते हुए वह मुजरिमों की तरह खड़े थे। उनके चेहरों पर एक अजीब तरह का ख़ालीपन उभर आया था। उन्हें लग रहा था कि उनमें से प्रत्येक की मुद्रा उसे व्यक्त न करते हुए एक-दूसरे को व्यक्त कर रही है। फिर भी वे आश्वस्त थे, कि वे उस स्थिति में वही थे, जो हो सकते थे।

व्यवस्था

इमामी फाटक की सलाखों में सिर धँसा कर बरांडे की तरफ़ देखने की कोशिश करता है। बिना बिना किसी पूर्वाभास के अजीब-अजीब घटनाएँ घट रही हैं। एक के बाद एक। अप्रत्याशित।

घर से चलते वक़्त उसे लगा था उसके साथ मज़ाक किया जा रहा है। तब भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था, जब वह दोनों पुलिसवालों के बीच भीड़ से घिरा हुआ बाज़ार से गुज़र रहा था और दुकानों पर खड़े लोग उसकी तरफ़ तमाशाई नज़रों से देखते हुए आपस में फुसफुसा रहे थे। भीड़ के चेहरों पर उत्सुकता और बेफ़िक्री का भाव था। चूँकि उसे पुलिस वाले पकड़ कर लिये जा रहे थे, इसीलिए उन्होंने बिना किसी खोज-बीन के ही उसके अपराध को स्वयंसिद्ध मान लिया था और क्या गुल खिलता है, यह देखने के लिए उसके पीछे-पीछे थाने तक चले आये थे। सबसे पीछे एक खोंमचेवाला अपना ठेला लुढ़काता हुआ चला आया था। उसका तजुर्बा था कि ऐसे मौक़ों पर लोग आसानी से अपनी जेब का पैसा ख़र्च कर देते हैं।

घोड़े को दाना डालकर इमामी खुद भी खाने की तैयारी कर रहा था कि उसका पता पूछते हुए वे दोनों सिपाही घर के भीतर आ धमके थे।

"आइए दीवान जी, बैठिए !" उन्हें देखकर इमामी ने चबूतरे पर पैबन्द लगी दरी बिछा दी थी। कहिए?"

सिपाही खड़े-खड़े एक-दूसरे से आँखों-आँखों में कुछ कहने लगे।

"इमामी तुम्हारा ही नाम है ?" एक सिपाही ने पूछा।

"हाँ हाँ...? क्यों...?"

"इमामी ताँगेवाला ?"

"हाँ, हाँ, मेरा ही नाम है। कहिए ?" इमामी को हैरानी हो रही थी।

"तुम्हें थाने में बुलाया है, चलो हमारे साथ", दूसरे सिपाही ने कुछ रौब भरी आवाज़ में कहा था।

"मुझे...? थाने में ?...किसलिए ?"

इमामी की समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है। उसने एक बार आँगन में रोटियाँ लिये खड़ी अपनी बीवी को देखा, जो घबराहट से भर गई थी। नीम की एक नीची डाल से तार के सहारे झूमती हुई लालटेन आँगन में आड़े-तिरछे साये फेंक रही थी। उसकी बीवी पर तने की ओट पड़ती थी और वहाँ से एक छाया की तरह दिखती थी। मिट्टी के उखड़े हुए फ़र्श पर हिलती-डुलती हुई दूसरी परछाइयों की तरह।

"चलने से इंकार नहीं चीफ़ साहब, पर कुछ मालूम तो हो कि बात क्या है ?"

"बात वहीं चलकर पूछ लेना, हमें नहीं मालूम।" सिपाही रुखाई से बोला।

इमामी उनकी तरफ़ टुकुर-टुकुर देखने लगा।

"अबे, चलता है सीधी तरह ?"

दूसरा सिपाही जो अपनी समझ में काफ़ी ज़ब्त कर चुका था, गुर्राकर बोला।

इमामी ने खूँटी से गमछा उतारकर सिर से लपेट लिया और क़मीज़ के बटन बन्द करता हुआ सिपाहियों के पीछे बाहर निकल आया। दो ही क़दम बढ़ा होगा कि भीतर से बीवी और दोनों लड़कियों के ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ें आने लगी थीं।

"अरे मैं कहता हूँ रोती काहे को है ? मैंने कोई चोरी की है या डाका डाला है, जो फाँसी पर चढ़ा देंगे। अभी थोड़ी देर बाद लौटा आता हूँ।" इमामी ने ऊँचे स्वर में बीवी को डाँट दिया। पर भीतर से वह खुद भी काफ़ी घबराया हुआ था। बीवी और लड़कियाँ और भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं। मुहल्लेवाले इकट्ठे हो गये।

"क्या बात है ? क्या बात है इमामी ?" एक ने पूछा।

"बात कुछ मालूम हो तो बताऊँ ?" इमामी ने सिर से हाथ मारते हुए कहा।

"क्या बात है चीफ़ साहब ?"

"दफ़ा एक सौ दस का केस है।" लोगों को डराने के लिए एक सिपाही ने यूँ ही कह दिया। "चल बे इमामी।"

"ले चलो जहाँ ले चलना हो। अपुन न शराब पियें, न जुआ खेलें, न चोरी-बदमाशी करें। अपुन को काहे का डर। जब कर नहीं तो काहे का डर।" इमामी ने ऊँचे स्वर में सबको सुना कर कहा और कंधे सिकोड़कर निरीहता से दोनों हाथ फैला दिये।

"हाँ-हाँ, तो चल।" पुलिसवाले ने उसकी गर्दन पर हाथ देकर आगे को ठेल दिया। इमामी एक आदमी के ऊपर गिरते-गिरते बचा।

वे थाने की तरफ़ बढ़ने लगे थे। आगे-आगे इमामी, उसके पीछे दोनों सिपाही उनके पीछे भीड़, जो निरन्तर बढ़ती जा रही थी।

भीड़ थाने के दरवाज़े पर रुक गयी। इमामी को एक कोने में कर दोनों सिपाही, थानेदार के पास जाकर उसकी तरफ़ इशारे करते हुए बातचीत करने लगे। इमामी की इच्छा हुई थी कि अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए उनकी अवज्ञा करता हुआ वहीं फ़र्श पर बैठ कर बीड़ी पीने लगे। पर एक अव्यक्त-से भय ने उसे भीतर से जड़ कर दिया था। लगा था जैसे उसके हाथ-पैर, हाड़-माँस के न होकर लकड़ी के हो गये हों। वह बुत की तरह चुपचाप खड़ा हुआ उनकी तरफ़ देखता रहा।

"अरे रामगुलाम, तुम जाकर जेठामल को ले आओ।" थानेदार ने गेट पर भीड़ से बातचीत करते सिपाही से चिल्लाकर कहा।

"और ज़रा इस ताँगेवाले को इधर भेजना। क्या नाम है इसका ?" इमामी धीरे-धीरे चलकर उनके समाने जा खड़ा हुआ।

"हाँ आँ-आँ। क्या नाम है तुम्हारा ?" उसकी ओर हिंस्र नज़रों से देखते हुए थानेदार ने पूछा। उसकी मूँछों पर जमे हुए थूक के छींटे चमक रहे थे। होंठ टेढ़े हो रहे थे।

"इमामी।"

"इमामी। बाप का नाम ?"

"इमामी वल्द ममदू।"

"इमामी वल्द ममदू। आ-ई-ई-ई-हि:-इ-इ।" डकार लेने के लिये थानेदार ने अपना जबड़ा फैला दिया। "ताँगा हाँकते हो ?"

"जी साहब। घर का ताँगा है।"

"हुँ ऊं ऊँ उँ:। क्या लेते हो शहर से स्टेशन का ?"

"चार आने सवारी। पूरे ताँगे के बारै आने।" इमामी हकला गया। सोचने लगा था ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि किसी पुलिसवाले से उसने पैसे ले लिये हों, या कोई बहाना कर दिया हो।

"दो फ़र्लांग के चार आने ?" थानेदार ने तेवर चढ़ा कर कहा।

"दो फ़र्लांग कहाँ साहब, सवा मील से ऊपर पड़ता है। रास्ते में गड्ढे पड़ते हैं, सो अलग। इधर दाना महँगा हो गया है। घोड़े की खुराक ही मुश्किल से निकलती है।"

"घोड़े की खुराक ही मुश्किल से निकलती है। तू और तेरी बीवी-

बच्चे हवा खाकर रहते होंगे।'' अपने तर्क पर खुश होते हुए थानेदार ने होंठ दाँतों में दबा लिया, ''क्यों ?'' इमामी सिटपिटा गया।

''ताँगे का लाइसेंस है ?'' थानेदार ने फिर पूछा।

इमामी ने सिर हिला दिया।

''बत्ती ?''

''बत्ती भी···'' इमामी डरने लगा। दफ़ा एक सौ दस वाली बात उठना चाहती है।

''बत्ती नहीं होगी। मैं तुम लोगों के लिए भला आदमी हूँ न। जब तक चूतड़ों पर सड़ासड़ डंडे नहीं बजते, तब तक कैसी बत्ती !''

''नहीं साहब, बत्ती भी है।'' कहने के लिए इमामी को काफ़ी हिम्मत जुटानी पड़ी।

''हाँ हाँ बेटे, ज़रूर होगी। चढ़ना किसी दिन हत्थे पर तब बताऊँगा। किस बात पर झगड़ा हो गया तुम्हारा जेठामल से ?''

''अपना तो किसी से भी झगड़ा नहीं हुआ। आज तक। भले ही सवारी कम पैसे दे।'' इमामी को फिर दफ़ा एक सौ दस का ख़याल हो आया था।

''तेरी चौकी के कांस्टेबिल ने यों ही रिपोर्ट कर दी ? अब कहोगे उससे मेरी रंजिश है। मैंने उसे एक मर्तबा ताँगे पर बैठाने से इंकार कर कर दिया था, इसलिए वह मुझसे रंजिश मानता है। क्यों ? क़ानून बहुत जानते हो बेटा।''

''नहीं साहब। अपनी तो किसी से रंजिश नहीं। कौन जेठामल ? कौन सिपाही ? मैं तो किसी को जानता भी नहीं। रंजिश करूँगा तो बीवी-बच्चों का पेट कौन भर जायेगा ? आठ सौ ग्राम का तो गल्ला लगा है।''

''हाँ, हाँ साले। काहे को पहचानोगे।'' कुर्सी की दो टाँगों पर झूलते हुए थानेदार ने आवाज़ दी। ''अरे कामतासिंह, ज़रा बताना तो इसे कौन जेठामल ! करना तो ज़रा बेटा की हुलिया टाइट।''

जूते बजाता हुआ एक क़द्दावर सिपाही इमामी के सामने आ खड़ा हुआ। फिर सुलगता हुआ एक झाँपड़ इमामी की बाईं कनपटी पर पड़ा था। जब तक वह संभले, दूसरा दाईं पर। इमामी का सिर भन्नाने लगा था। लगा था जैसे सब कुछ घूम रहा हो। वह दोनों हाथों से सिर थाम कर वहीं फ़र्श पर बैठ गया था।

''बन्द कर दो साले को।'' थानेदार की फुफकारती आवाज़ फिर सुनाई दी थी।

कामतासिंह ने उसे बाज़ू से पकड़कर उठाया था और घसीटकर

कोठरी के भीतर डाल दिया था।

कुछ देर तक फ़र्श पर नीमहोशी की हालत में पड़े रहने के बाद इमामी सिर थाम कर उठ खड़ा हुआ। चारों ओर से भन-भन् करते हुए हज़ारों मच्छर उसके चेहरे पर टूट पड़े। उसकी ज़बान पर खट्टा-खट्टा-सा स्वाद जम गया था। कोई दाँत जड़ से हिल गया था और खून निकल कर मुँह में भरता जा रहा था। उसने सारी घटनाओं को सिलसिलेवार सोचने की कोशिश की थी। पर वह या तो बरांडे में कुर्सी पर बैठे थानेदार के बारे में सोच सकता था, या चेहरे के गिर्द चक्कर काटते उन हज़ारों मच्छरों के बारे में, जिनकी अनवरत भनभनाहट उसकी चेतना का अंश होती जा रही थी। उसने जेब को टटोलकर एक बीड़ी निकाली थी और उकड़ूँ बैठकर लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा था।

इमामी को ठीक-ठीक अन्दाज़ नहीं होता कितना वक़्त गुज़रा होगा। जब वह आया था, तहसील में सात घंटे ठुके थे...।

गेट से, दो सिपाहियों के साथ पट्टेदार पाजामा और पूरी आस्तीन की कमीज़ पहने एक दुबला-पतला आदमी भीतर आता दीखता है। थानेदार को देखते ही वह दोनों हाथ माथे तक ले जाकर नमस्कार करता है और चुपचाप खड़ा हो जाता है। थानेदार ने लैंप की बत्ती को ऊँचा किया है, जिससे उसका पीला चेहरा तथा आँखें और होठों के गिर्द पड़ी बेहिसाब झुर्रियाँ स्पष्ट दिखने लगी हैं।

"हूँ-ऊँ-ऊँ। जेठामल ?" उसकी ओर खूंख़्वार नज़रों से देखता हुआ थानेदार मेज़ पर पड़े कागज़ पर पेंसिल से आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचने लगता है।

"जी हाँ हुज़ूर···" जेठामल उस बकरे की तरह लगता है, जिसे कुछ ही देर बाद ज़िबह किया जाना हो।

"मिठाई, नमकीन और चाय बेचते हो ?" थानेदार इस तरह कहता है, जैसे उसकी सात पुश्तों को जानता हो।

"जी हाँ सरकार··जी हाँ माई-बाप···" जेठामल थर-थर काँपने लगा है।

"कैसी चलती है दूकान ?"

"गुज़र हो जाती है मालिक।"

"हुँ ऊँ-ऊँ। शक्कर किस भाव बेचते हो ?"

"शक्कर नहीं बेचता मालिक। जितनी का कोटा मिलता है, वही मिठाई और चाय के लिए पूरी नहीं पड़ती।"

हाथ की पेंसिल फेंक कर थानेदार उसे आँखें गड़ाकर देखने लगता है।

जेठामल घबराकर 'सावधान' की मुद्रा में खड़ा हो जाता है। चेहरे पर सपाट जड़ता का भाव फैल जाता है।

"एक भाई नेतागिरी के लिए छोड़ रखा है कि वह इस उस की झूठी शिकायतें करे। शक्कर के फ़र्जी परमिट बनवाकर लाये।" कंधों से लटकते हुए जेठामल के हाथ अपनी जगह पर थोड़ा हिलते हैं, जैसे हाथ न होकर काठ की खपच्चियाँ हों। कीचड़ भरी आँखें जल्दी-जल्दी खुलती बन्द होती हैं, जैसे चुँधिया रही हों।

"नहीं हुज़ूर...।"

"भाई नेता नहीं है तेरा ?" थानेदार डपट कर कहता है।

"...पार्टी का मेंबर तो है।" जेठामल पराजित स्वर में कहता है। अब वह अपने ऊपर लगाये जाने वाले किसी भी अभियोग को चुपचाप स्वीकार कर लेने के लिए तैयार दिखने लगा है।

"ज़रा समझा देना उसको। बहुत नेतागिरी का भूत चढ़ा तो किसी दिन जूतों से उतारूँगा, समझे कि नहीं ?"

जेठामल हाथ जोड़कर सिर हिला देता है।

"किस बात पर झगड़ा हो गया तुम्हारा इमामी से ?"

"न...न, नहीं साहब", जेठामल सिर को दो-तीन बार दायें-बायें करता है।

"अबे, साफ़-साफ़ क्यों नहीं बोलता ? पीकर आया है ?' ज़मीन पर बूट मारकर थानेदार चीख पड़ता है।

"मैं किसी से झगड़ा नहीं करता साहब। कई लोग उधारी का पैसा मार गये पर झगड़ा नहीं किया।" जेठामल की आवाज़ खरखराने लगती है, जैसे रेत भरे फ़र्श पर पेटी सरकाई जा रही हो। "परदेसी आदमी झगड़ा करेगा कि अपना पेट भरेगा।"

"देखो साले को। हमसे उड़ने चला है। अबे तूने इमामी को पाँच रुपये की एक किलो शक्कर नहीं बेची थी। तीन रुपया तू ले चुका है। बाक़ी दो रुपयों के लिए आज तूने उसका ताँगा रोक उसे पीटने की कोशिश की। फिर जान से मार देने की धमकी दी।" गले का थूक निगलने के लिए जेठामल अपने चेहरे को इधर-उधर घुमाता है। "नहीं साहब। मैं शक्कर नहीं बेचता।" थानेदार से नज़रें मिलते ही सिटपिटा जाता है और बुदबुदाता है, जैसे अपने से ही कह रहा हो, "मैं शक्कर नहीं बेचता।"

उसकी ओर घृणा से देखता हुआ थानेदार आवाज़ देता है, "कामता सिंह ! बन्द कर दो साले को। सुबह तक अपने-आप अक़्क़ल ठिकाने आ जायेगी।"

कामतासिंह को उसे बाजू से नहीं पकड़ना पड़ता। जेठामल आप ही अपने बरसाती जूते घसीटता हुआ कोठरी के भीतर हो जाता है। कामतासिंह फाटक बन्द कर फिर से ताला जड़ देता है। फ़र्श पर उकड़ू बैठा हुआ जेठामल पथराई आँखों से सलाखों से बाहर देख रहा है। फिर घुटनों में सिर डाल लेता है। उसका शरीर धीरे-धीर हिलता है। हिचकियाँ ले-ले कर रो रहा है।

"हमें भी पकड़कर ले आये हैं। कहते हैं बिना बत्ती के ताँगा चलाता हूँ। कोई कह दे, जो कभी देखा हो तो। अल्ला मियाँ सब देखने वाला है।" इमामी कहता है।

जेठामल अपना चेहरा उठाकर उसकी तरफ़ आँखें फाड़कर देखने लगता है। इससे पहले उसे पता नहीं था कि कोठरी में उसके अलावा कोई और भी है। उसके लिए इमामी की उपस्थिति सिर्फ़ एक आवाज़ है। वह उसी आवाज़ के लिए कहता है। "मैंने आज त. ब्लैक से शक्कर नहीं बेची। दूकान के लिए ही तो पूरी नहीं पड़ती। उलटे ब्लैक से ख़रीदनी पड़ती है। भगवान देखने वाला..."

इमामी बीड़ी जलाने के लिए तीली घिसता है। तीली की फीकी रोशनी में कोठरी की दीवारें, लोहे का जंगला, फ़र्श और जेठामल का ऊबड़-खाबड़ चेहरा दिखता है। सब कुछ हिलता-डुलता हुआ, पानी में काँपती परछाइयों की तरह। सब कुछ पहले जैसा। पर जेठामल की उपस्थिति से सब कुछ बदला-बदला। अपने को आश्वस्त करता हुआ इमामी लम्बे-लम्बे कश खींचने लगता है।

"कहते हैं मैंने इमामी को ब्लैक से शक्कर बेची है। आज उससे झगड़ा किया और जान से मार देने की धमकी दी। जानता भी नहीं कौन-सा इमामी। झगड़ा तो मेरा आज तक किसी से नहीं हुआ। भूखे पेट झगड़ा है कहीं···? अच्छी दिल्लगी है।"

"इमामी मेरा ही नाम है। कहते हैं मुक़दमा चलायेंगे। चला दें मुक़दमा। करा दें जेल। जब मैंने कुछ किया ही नहीं।"

"कब बेची है मैंने तुमको शक्कर?" जेठामल का स्वर खिंचा हुआ है। वह आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ़ घूर रहा है। इमामी को लगता है यदि यह कमज़ोर न होता, तो जरूर उसके ऊपर टूट पड़ता। इस इमामी के निर्दोष होने से कोई दिलचस्पी नहीं। हो सकता है, उसे झूठा समझ रहा हो। इमामी को पहली बार शक होता है। हो सकता है यह ब्लैक करता हो। न सही इमामी, किसी और को शक्कर बेची हो। क्या फ़र्क़ पड़ता है?

"मेरा नाम इमाम बक्स वल्द महमूद बक्स है।" इमामी निर्लिप्तता से बीड़ी का कश खींचता है। "वह कोई दूसरा इमामी होगा, जिसे तुमने शक्कर बेची है।" इमामी फिर एक लम्बा कश खींचता है और लापरवाही से धुएँ को उगल देता है।

"झूठ, झूठ। सब कोई मुझे फँसाना चाहते हैं। अंधेर है। भगवान **सब** देखता है।"

"क़ानून-क़ानून है। क़ानून किसी को भी नहीं बख्शता।" इमामी ख़ुद नहीं समझता वह क्या और किसलिए कह गया। जेठामल दीवार से चिपक कर बैठ गया है। क़ानून शब्द से डर गया है।

सन्नाटा छाया रहता है।

"मैंने आज तक बिना बत्ती ताँगा नहीं चलाया।" इमामी जेठामल की सहानुभूति के लिए नहीं, उससे छोटा न पड़ने की इच्छा के तहत कहता है।

एक बार सिर उठाकर जेठामल फिर घुटनों में डाल लेता है। कुछ बोलता नहीं।

थानेदार के पास तीन जने आकर बैठ गये हैं। पहले इस क्षेत्र के एम० एल० ए० हैं, दूसरे इमामी के मुहल्ले यानी वार्ड नम्बर तीन से नगरपालिका के सदस्य पांडे। तीसरे को इमामी सिर्फ़ शक्ल से जानता है। वे सुबह-शाम थाने में बैठते हैं। जब कोई किसी जुर्म में पकड़कर लाया जाता है, तो उस और थानेदार के बीच मध्यस्थ का पार्ट अदा करते हैं। ग़ल्ले की दलाली करते हैं। हर वक़्त आँखों पर धूप का चश्मा चढ़ाये रहते हैं।

धीमे-धीमे चलता हुआ वह फाटक के पास आकर खड़ा हो गया है।

"इमामी···" उसने काफ़ी आत्मीय स्वर में बुलाया है।

"जी साब।"

"देखो घबराने की कोई बात नहीं। कोतवाल साहब से बात कर रहे हैं। एं?"

काले चश्मेवाले के पीछे पांडे आ खड़ा हुआ है।

"देखो इमामी। यह थाना है। समझे। जो कुछ कहा जाये चुचाप मान लेना, बहस करोगे तो फँस जाओगे। फिर हम नहीं जानते।" पांडे कहता है।

"पर मैंने बिना बत्ती का ताँगा चलाया ही नहीं..." इमामी हिचकता हुआ कहता है।

"ज़्यादा बक-बक करोगे तो फँस जाओगे।" काले चश्मेवाला डपट देता है।

"झूठ नहीं कहता साहब। पंचवक़्ता नमाज़ी हूँ। अल्ला मियाँ देखनेवाला है।"

पर उन्हें उसके पंचवक़्ता नमाज़ी होने या ताँगे की बत्ती से कोई मतलब नहीं।

"बहस नहीं किया करते इमामी, यह थाना है।" चश्मेवाला चेतावनी के स्वर में कहता है।

फिर वे बरांडे की तरफ़ लौटने लगते हैं।

"बाबूजी, बाबूजी।" इस बार जेठामल आवाज़ देता है। वह फाटक की सलाख़ों से चिपक कर खड़ा हो गया है।

"क्या है ?" चश्मेवाला लौट पड़ता है।

"मैंने शक्कर नहीं बेची बाबूजी। क़सम ले लें, साहब ! बच्चे की क़सम सरकार।"

"ये शक्करवाला कहाँ से पैदा हो गया भाई ?" चश्मे वाला हँसने लगता है।

"मैं जेठामल सिंधी हूँ साहब। नज़ाई में चाय की दूकान है। कभी चाय पीने आते ही नहीं उस तरफ़। जानेंगे कैसे सरकार ?"

"रिश्वत !" चश्मेवाला जोर से कहता है और बरांडे की ओर चेहरा घुमाकर हँसने लगता है, "रिश्वत।"

"अरे, क्या कह रहा है, दुबेजी ?" थानेदार चिल्लाकर पूछता है। और बात को समझे बिना ही हँसना शुरू कर देता है।

"रिश्वत-रिश्वत। एक कप चाय की रिश्वत।" चश्मेवाला दोहराता है।

"जहाँ पर आज आदमी क़दम-क़दम पर रिश्वत देने की सोचता हो, वहाँ प्रजातन्त्र चल ही नहीं सकता। यहाँ तो तानाशाही होनी चाहिए, जो हर भ्रष्ट आदमी को चौराहे पर गोली से उड़ा दे।" अपनी बात पर जोर देने के लिए एम० एल० ए० मेज़ पर मुक्का जमाता है। "मैं कहता हूँ उसके अलावा कोई चारा ही नहीं रह गया।"

थानेदार समर्थन में सिर हिलाता है।

इसके बाद पता नहीं, वे किस बहस में जुट जाते हैं। कभी-कभी अटक-अटक कर अँग्रेज़ी बोलने लगते हैं। डेमोक्रेसी, जनता, नैतिकता, भ्रष्टाचार, क़ानन, शासन आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग करते हैं। अन्त में एक-दूसरे के साथ सहमत होते हुए गर्व से मुसकराने लगते हैं।

"साहब, मैं बिलकुल बेक़सूर हूँ। कार्ड में जितनी शक्कर मिलती है, वही दूकान के लिए पूरी नहीं पड़ती। उल्टे ब्लैक से खरीदनी पड़ती है।" जेठामल ज़ोर-ज़ोर से कह रहा है। मानो उनके गूँगे कानों में अपनी बात

उड़ेलकर ही मानेगा।

"ब्लैक से ख़रीदते तो हो ?" काले चश्मेवाला वकील की तरह उसकी बात पकड़ लेता है।

"कभी-कभी, सभी दूकानदार करते हैं। पर बेचता नहीं। साहब, बच्चे की क़सम।"

"एक ही बात है। ख़रीदना और बेचना।" काले चश्मेवाला अपनी बात पर खुश होकर बरांडे की तरफ़ मुँह घुमाकर हँसने लगता है।

जेठामल को महसूस होता है, जैसे भरी अदालत के सामने उसका बयान बिगड़ गया है। वह वहीं से इमामी को ईर्ष्याभरी निगाहों से देखता रहता है। फिर दीवार से टिककर उकड़ूँ बैठ जाता है। होंठों ही होंठों में बुदबुदाता है, "मैंने ब्लैक से शक्कर नहीं बेची।" पर उसकी आवाज़ न तो इमामी को आश्वस्त करती है, न खुद को।

"जिस किसी को भी लाते हैं, कोई न कोई सिफ़ारिश के लिए चला आता है।" थानेदार शिकायत के लहजे में कह रहा है। मेरी पोज़ीशन कोई नहीं समझता। देखिए ये कप्तान साहब का जी० ओ०।" एम० एल० ए० आँखों पर चश्मा चढ़ा कर पढ़ने लगता है। फिर कागज़ वापस सौंपते हुए गंभीर भाव से कहता है, "हूँ !"

"बताइए।"

"मैं आपके काम में दखलंदाज़ी के इरादे से नहीं आया था।" एम० एल० ए० का चेहरा कर्त्तव्य भाव से बेहद गंभीर हो जाता है। "पर ये ताँगेवाला है न। ये पांडेजी के मुहल्ले का माइनारिटी का आदमी है। इससे इनकी पोज़ीशन पर प्रभाव पड़ सकता है। मुसलमानों के कम से कम तीन सौ वोट हैं। महीने भर बाद ही इलेक्शन है, म्यूनिस्पैलिटी का। क्या नाम है जी उस ताँगेवाले का ?" एम० एल० ए० पांडे की तरफ़ को झुकता है।

"इमामी।"

"इमामी को छोड़ दीजिए।" एम० एल० ए० भाषण बंद करने के अंदाज़ में कहता है। "विशेष इस लिए कहना पड़ता है, क्योंकि चुनाव बिलकुल सिर पर है।"

"ऐसा कैसे हो सकता है कि आप कुछ कहें और हमारे एस० ओ० साहब टाल दें ! पर इनकी भी अपनी परेशानियाँ हैं।" बारी-बारी से दोनों की तरफ़ देखता हुआ, काले चश्मेवाला पीले दाँत निकाल कर चापलूसी से हँसने लगता है।

"कप्तान साहब का जी० ओ० तो आपने देख ही लिया। यहाँ की

आबादी तीस हज़ार है। इस हिसाब से दफ़ा एक सौ दस, तीन बटे सात और दफ़ा एक सौ साठ में कम से कम तीन-तीन चालान होने चाहिएँ।" थानेदार कंधे उचका कर हाथ फैला देता है, मानो उसके साथ बड़ी ज़्यादती की जा रही हो।

"अब आप ही बता दीजिये, किसे पकड़ लें। जिसे लाते हैं, उसी के साथ कोई न कोई सिफ़ारिशवाला चला आता है। किसी के साथ मेम्बर साहब, किसी के साथ चेयरमैन साहब, तो किसी के साथ मंडी कमेटी के प्रेसीडेंट। किसी-किसी के लिए तो ज़िला परिषद् के अध्यक्ष का फ़ोन आ जाता है। हमें क्या पड़ी हैं कि उससे बुराई मोल लेते फिरें। पर जब कुछ नहीं करते तो आप ही असेम्बली में शोर मचाते हैं कि हर जगह भ्रष्टाचार, बदमाशी और चोरबाज़ारी बढ़ती जा रही है। पुलिस कुछ नहीं करती...।"

"असेम्बली में मैंने एक प्रश्न उठाया था।" एम० एल० ए० कहता है, "अखबार वाले पीछे पड़े रहते हैं सो अलग।" थानेदार कुर्सी से टिककर बैठ जाता है और माथे की सिलवटें सहलाने लगता है।

"दैनिक जनतंत्र' में आपके खिलाफ़ एक शब्द भी कभी छपा हो तो बतायें।" पांडे तपाक से कहता है।

"न सही एक जनतंत्र।"

"गुंडा-विरोधी अभियान में भी आप जो कुछ चाहेंगे छप जायेगा।" पांडे गर्व से कहता है।

"हाँ साहब, आप पत्रकार हैं। ज़रा ख़याल रखिएगा। भाई जनता का राज है। जनता की राय अफ़सर लोग भी मानते हैं।" थानेदार कहता है और एक सिपाही को आवाज़ देता है, "इमामी को लाना।"

इमामी सहमा हुआ कुछ दूरी पर खड़ा हो जाता है।

"तुम कितने ताँगेवालों को जानते हो, इमामी? हाँ ज़रा बोलो तो। लिखते जाना मुंशी जी।"

कुछ समझता, कुछ न समझता हुआ इमामी नाम और पते लिखाने लगता है।

"कितने हुए, मुंशी जी ?"

"दस।"

"काफ़ी हैं। और देखो इमामी, अब कभी बिना बत्ती के ताँगा मत चलाया करो। इस मर्तबा तो पांडे जी के कहने से छोड़े दे रहा हूँ।" इमामी की फिर विरोध करने की इच्छा होती है। पर अब उसका विवेक जाग गया है। वह समझता है, ज़रा-सी बात से वह फिर उसी झंझट में फँस सकता है।

"बहुत अच्छा, साहब !"

"सुन लिया न ठीक से ?" थानेदार की तरफ़ कृतज्ञता से देखता हुआ पांडे कहता है।

"और देखो तुम्हें, जेठामल वाले केस में गवाही देनी पड़ेगी।"

"गवाही ?" इमामी के सामने जेठामल का पीला चेहरा तैर जाता है।

"हाँ, कहना पड़ेगा उसने तुमको पाँच रुपये की एक किलो शक्कर बेची थी। सब बातें बाद में बता दी जायेंगी।"

"अच्छा साहब।"

"अब जा सकते हो।"

सड़क पर चलते हुए इमामी के दिमाग़ में प्रजातंत्र, नैतिकता, भ्रष्टाचार, क़ानून आदि शब्द गूंजने लगते हैं। वह समझने की कोशिश करता है कि उनका क्या मतलब होता है। जब कुछ भी समझ में नहीं आता, तो अपने आपको झिड़क देता है। इतना ही समझता होता तो क्यों आज पकड़ा जाता। वह भी उन्हीं की तरह कुर्सी पर न बैठा होता ?

घर पहुँच कर अपने लौटने का समाचार सुनकर इकट्ठे होते लोगों के सामने उसने बताया कि सरकार गुंडों और भ्रष्टाचारियों के खिलाफ़ सख्त क़दम उठा रही है। आज रात को कुछ गिरफ़्तारियाँ होंगी।

"मुझे सरकारी गवाह बनाया गया है।" अन्त में इमामी ऐलान करता है। उसकी आँखें गर्व से चमकने लगती हैं।

सब लोग उसे हैरत से देखते रह जाते हैं।

•

मसीहा

मुझे लग रहा था, मैं थक रहा हूँ। हम कई मील चल चुके थे और मुझे अभी तक पता नहीं था कि कितना और चलना है। मेरे बायें पैर के जूते की सियन उधड़ गई थी और चलने में दिक़्क़त हो रही थी। स्वाभाविक था कि मेरी चाल धीमी पड़ जाये और मैं उनसे पिछड़ने लगूँ। मैंने कई तरह से मुँह बना कर अपनी अनिच्छा और उकताहट प्रकट की थी पर वे मज़बूत और आशावादी जीव थे। वे मेरी तरफ़ प्रोत्साहित करने वाली मुसकराहट मुसकराते, मेरी पीठ ठोंकते और मुझे बग़ैर कुछ बोलने का मौक़ा दिये फिर मुझे अपने पीछे लगा लेते। मैं लाचारी से आस्तीन से अपने चेहरे का पसीना पोंछता और घिसटता हुआ उनके पीछे हो लेता।

हम बाज़ार पार कर चुके थे और अब एक चौराहे पर खड़े थे। चौराहे का पुलिस वाला अपने गोल चबूतरे पर खड़ा हुआ रिक्शे में बैठी एक औरत से बतिया रहा था। वे काफ़ी अन्तरंग लग रहे थे जैसे अर्से से एक-दूसरे को जानते हों। पुलिस वाला बार-बार अपनी ताज़ी बनी हुई दाढ़ी पर हाथ फेरता और स्टंट फ़िल्मों के हीरो की बाँकी अदा से रिक्शे वाली औरत की बात पर हँस देता। रिक्शे के पीछे रिक्शों, कारों, साइकिलों, ठेले व लों और पैदल चलने वालों का ताँता लगा हुआ था। वे सब अपनी-अपनी ज गह पर खीजे और उकताये हुए खड़े थे। उन्हें कोफ़्त हो रही थी। इतनी ब ड़ी भीड़ में पुलिस वाले का विरोध करने वाला कोई भी नहीं। सबके सब कायर हो गये। अन्त में एक आदमी ने साहस किया 'हमने पिछले चुनाव में ग़रीबी हटाने के पक्ष में वोट दिया था...!' वह सिर पर सब्ज़ी से भरा हुआ टोकरा लिये था और नंगे पैर था। उसके दोनों पैरों में सड़क का पिघला हुआ डामर भिड़ा था। सड़क की तपन से बचने के लिए वह बारी-बारी एक पैर के बल खड़े होकर दूसरे को हवा में टाँग कर हठ-योग की मुद्रा में हो जाता। "कौन है बे?" पुलिस वाले ने खालिस गुंडई लहजे में रुके

हुए ट्रैफ़िक को देखा और उतनी लम्बी क़तार देख कर सन्तोष से भर गया कि औरत को प्रभावित करने के लिये इतना काफ़ी है। उसने बेफ़िक्री से कान पर खुसी हुई सिगरेट निकाल कर सुलगाई और औरत से बोला, "तुम बेफ़िक्री से वहीं अपने कोठे में रहो सुन्दरबाई। मैं वहाँ के चीफ़ साब से बोल दूँगा। क़ानून हमारे जूतों की हील है। तुम्हें पता होना चाहिए, सारे देश में बहुत जल्दी समाजवादी शासन लागू होने वाला है...।"

टैक्सी में बैठा हुआ एक सूटधारी अपने साथी से कह रहा था, "हमें इसका विरोध करना चाहिए। आख़िर किसी चीज़ की हद होती है। ये क्या बात हुई कि जनतन्त्र के सारे फ़ायदे सिर्फ़ पुलिस वालों को या रंडियों को...हमने स्थाई सरकार के लिए वोट दिया था...।"

"जब तक वहाँ पहुँचेंगे बाज़ार ही उठ जायेगा। फिर हमारी सब्ज़ी कौन खरीदेगा...यों भी हर जगह कम्पटीशन आ गया है।" टोकरे वाला उदास हो रहा था।

हम दोनों फ़ुटपाथ पर एक पेड़ के नीचे खड़े थे। प्यास से गला सूख रहा था पर वे झोले से डायरी निकाल कर तेज़ी से कुछ नोट कर रहे थे।

"देखा... ?" उन्होंने झोले में डायरी वापस रखते हुए मुस्कराकर कहा। मुस्कराहट से लगा जैसे उन्होंने किसी बहुत बड़े 'सत्य' का उद्घाटन कर दिया हो।

"मुझे प्यास लग रही है, पर नल चौराहे के उस तरफ़ है।" मैंने कहा।

"लो बीड़ी पियो...।" बीड़ी सुलगाकर वे दार्शनिक मुद्रा में आ गये, "एक ही चीज़ तुम हर जगह पाते हो। नहीं...?"

मैं जिज्ञासु भाव से उनका चेहरा ताकने लगा।

"सोशल इंजस्टिस...।" वे पेड़ की टहनियों में खोये हुए-से होंठों-होंठों में बुदबुदाये···।

"ये क्या दिल्लगी हो रही है...।" भीड़ में से एक आदमी चीखा। ट्रैफ़िक को जाने का सिगनल देकर पुलिस वाला आश्चर्यजनक फ़ुर्ती से चबूतरे से कूदा और कुर्ता-पाजामा पहने एक व्यक्ति को गरेबान से पकड़कर फ़ुटपाथ पर आ खड़ा हुआ।

"हूँ...", उसने सब्ज़ी वाले को अपने पास आने का हुक्म दिया और पिच्च से नाली में थूक दिया।

"मैं पोलिटिकल सफ़रर रहा हूँ", दुबला-पतला अधेड़ पुलिस वाले की गिरफ़्त से छूटने के लिए छटपटा रहा था। मगर पुलिस वाले ने उसका गला मज़बूती से पकड़ रखा था।

"तुम्हारे पास लाइसेंस है ?" पुलिस वाले ने सब्ज़ी वाले से पूछा।

"सब्जी बेचने पर लाइसेंस नहीं हैं, मालिक।"

"साले हमका क़ानून सिखाने चला है। चलो मेरे साथ, अभी पता चल जायेगा, कितना क़ानून छाँटना आता है।"

"प्रदेश के पुलिस मंत्री हमारे साथ एक ही जेल में थे।" कुर्ता-पाजामा वाले अधेड़ ने बताया।

वे झोले से डायरी निकालकर फिर नोट करने लगे। ऐसे मौक़ों पर वे अक्सर अनुपस्थित हो जाते थे। मुझे लगता था, यह उनकी महान् प्रतिभा की वजह से है। मैं चुपचाप उनका सोच में लीन गम्भीर चेहरा देखने लगा।

सड़क ख़ाली हो चली थी। मुझे लग रहा था, अब पुलिस वाला किसी क़ानूनी धारा का उल्लेख करता हुआ उन दोनों को डंडे से मारेगा। वह दृश्य मैं बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगा। मेरी आदत हो गई है कि जब-जब मैं भूखे और कमज़ोर लोगों पर मार पड़ते हुए देखता हूँ मुझे अपना-आप एक हिजड़ा नज़र आने लगता है। इस शर्मनाक आत्मस्वीकृति से बचने का सबसे अच्छा तरीक़ा ये होता है कि मैं वहाँ से भाग निकलता हूँ।

"चला जाये", मैंने फिर कहा, "मेरा गला सूख रहा है।"

"इट्स ए नैकेड केस ऑफ़ सोशल इंजस्टिस", वे बुदबुदाये।

वे फिर अपने-आप में खो गये।

पुलिस वाला उन दोनों को पकड़ कर अपने साथ ले जाने लगा तो वे फिर लौट आये। "वे दो हैं। वे दो-चार रुपये रिश्वत देंगे और अपनी ख़ैर मनाते हुए घर चले जायेंगे" उन्होंने अफ़सोस से कहा, "तुमने देखा कैसे लोगों से हमारा वास्ता पड़ा है। बट वी हैव टु फुलफ़िल आवर हिस्टॉरिक मिशन।" सहसा वे मुस्कराये और उनका चेहरा दीप्तिमान हो गया।

"प्यास लगी है", मैंने उन्हें याद दिलाया कि मैं अर्से से प्यासा हूँ।

"आय वाज़ थिंकिंग ऑफ़ दोज़ पुअर कावर्ड्स।" उन्होंने कहा और चलने लगे। मैं जूता घसीटता हुआ उनके पीछे हो लिया।

उस अंधेरी सड़क पर बेतहाशा भागते हुए मैंने पाया था कि मेरे साथ कोई और भी है। पहले मैं डरा था और मैंने दौड़ और भी तेज़ कर दी थी। फिर यह देखकर कि वह भी मेरी तरह कोई भगोड़ा है, मैं आश्वस्त हो गया था। वे अपनी चाल तेज़ कर मेरी बराबरी पर आ गये। "मुझे नहीं पता था इस वक़्त वहाँ कोई हो सकता है···" उन्होंने भागते-भागते कहा था, "मुझे अफ़सोस हो रहा है कि मैं पलीते को माचिस नहीं दिखा सका। एक मिनट की देर हो गई।"

पुलिस वाले सीटियाँ बजाते हुए हमारे पीछे भाग रहे थे। पर कुछ अपने भारी जूतों की वजह से, कुछ पकड़ने में ज़्यादा दिलचस्पी न होने के कारण वे पिछड़ गये थे। यों वे लोग ट्रेन्ड पिछलग्गू थे और हमारे सहसा भाग खड़े होने मात्र से उन्हें हमारे अपराध, निरीहिता और अपनी वीरता का आभास हो गया था। और वे अपने मनोरंजन के लिए हमारे लिए चुनिन्दा गालियों का उच्चारण करते हुए पीछे लग गये थे। मैं अपनी प्रेमिका के घर से लौट रहा था जो शहर के बाहर एक कच्चे मकान में रहती थी। उसने बता रखा था कि आज रात उसका पति बाहर होगा। शहर के परकोटे के बाहर क़दम रखते ही मुझे एक कड़कती हुई सख्त आवाज़ सुनाई पड़ी थी और बिना आगा-पीछा सोचे मैंने जिस तरफ़ मेरा मुँह था उधर को भागना शुरू कर दिया था। उस तरफ़ भागने का एक कारण यह भी रहा कि उधर के लैम्प-पोस्टों के सारे बल्ब फ्यूज़ थे। वैसे यह बात उस वक़्त साफ़-साफ़ समझ में नहीं आई थी। मैंने उनकी तरफ़ देखा था। वे अँधेरे में छलाँगें भरते हुए निश्चिन्तता से दौड़ रहे थे जैसे क्रास-कंट्री का अभ्यास कर रहे हों। यद्यपि पीछे पुलिस वालों की दौड़ने की आहटें बन्द हो चुकी थीं तो भी मेरे ऊपर उनका आतंक हावी था। मैंने पाया था, मैं बहुत थक रहा हूँ। मैं चाहता था, सड़क छोड़कर जंगल में उतर जाऊँ और कहीं छिप कर सुस्ता लूँ। तभी वे मेरे एकदम क़रीब आ गये और आत्मीयता से बोले, "बस थोड़ी दूर और...आगे एक सुरक्षित स्थान है।"

मैं बग़ैर कुछ सोचे उनके पीछे लग गया। थोड़ी दूर भागने के बाद वे सहसा बाईं तरफ़ मुड़े। वह एक जंगली पगडंडी थी, दोनों तरफ़ घनी काँटेदार झाड़ियाँ थीं, कुछ देर वे रुके, "आ गये!"

उन्होंने झोले से माचिस निकाल कर तीली घिसी। दाईं तरफ़ एक पुलिया थी जिसका मुँह झाड़-झंखाड़ से ढँका हुआ था। "आओ" उन्होंने कहा और तीली की रोशनी में संभल-संभल कर आगे बढ़ने लगे। भीतर पहुँच कर हम रेत पर बैठ गये। वे हाँफ रहे थे और खाँस रहे थे। मेरे पैर जगह-जगह छिल गये थे—खून रिस रहा था और चुनचुनाहट हो रही थी।

"अब उनके बाप भी हमें नहीं पा सकते," वे वीरता-पूर्वक थोड़ा-सा हँसे।

"हम कहाँ हैं?" मैंने पूछा। दरअसल उस वक़्त मैं आपे में नहीं था। उस हालत में कोई नहीं हो सकता।

जवाब में वे बड़प्पन से हँसे, "सुरक्षित हो। शहर से ज़्यादा दूर नहीं हो। बीड़ी पियोगे?" उन्होंने पूछा और झोले में बंडल तलाशने लगे।

बीड़ी निकाल कर उन्होंने तीली घिसी। माचिस की झपकती रोशनी

में मैंने उन्हें ग़ौर से देखा। उन्होंने चूड़ीदार पाजामा, खद्दर का ढीला-ढाला कुर्ता और किरमिच के लाल जूते पहन रखे थे। उनका चेहरा औसत से थोड़ा-सा बड़ा, चौड़ा, चकला और चेचक के दाग़ों से भरा था। कनपटियों के पास के बाल ग़ायब थे। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी और प्रभावशाली थीं और इस वक़्त हँस रही थीं।

"उधर किस काम से गये थे?" उन्होंने एक बीड़ी मुझे सौंपी, फिर खुद कश लगाने लगे। उनका स्वर भारी, कमांडिंग और स्नेहिल था। मैं उनका चेहरा ठीक से नहीं देख पा रहा था पर मुझे लग रहा था, सवाल करते हुए वे बराबर मेरे चेहरे को टटोल रहे हैं। वे घुटनों को हाथों से घेर कर उकड़ूँ बैठे हुए थे और बेफिक्र थे जैसे अभी जो कुछ घटा वह नितान्त ग़ैर-महत्त्वपूर्ण बात थी।

"यों ही···।" मैंने टालू जवाब दिया और बड़ी पीने लगा। बीड़ी का धुआँ काफ़ी तेज़ और कड़ुवा था। मेरी इच्छा हुई, उनसे बीड़ी का ब्रान्ड दरियाफ़्त करूँ।

"चोरी के इरादे से ?" उन्होंने मृदु स्वर में पूछा। वे मुझे अँधेरे में लगातार घूर रहे हैं, इसका पता मुझे इस बात से लगा कि मेरी गर्दन पर एक साथ दर्जनों चींटियाँ रेंगनी शुरू हो गई थीं।

"नहीं।"

"किसी लैफ़्टिस्ट पार्टी के कार्ड होल्डर हो ?"

"नहीं।" मुझे अपनी प्रेमिका का गदराया जिस्म और बदबूदार पसीना याद आ रहा था। मैं ख़ैर मना रहा था कि पुलिस वालों के चंगुल से बच निकला। नहीं तो ये सूँघते-सूँघते प्रेमिका तक भी जा पहुँचते। वह स्थिति मेरे लिए भयानक होती।

"किसी नेता, अफ़सर या कारखानेदार के खिलाफ़ पर्चे चिपका रहे थे ?" लग रहा था वे तुले हुए हैं।

"एम० एल० ए० या एम० पी० के ख़िलाफ़ ?"

"नहीं।" बीड़ी बुझ गई थी। मुझे लग रहा था, उनसे एक बीड़ी और माँगूं।

"मुख्य-मंत्री या प्रधान मंत्री के ख़िलाफ़ ?"

"नहीं। आप कौन-सी बीड़ी पीते हैं ?"

"फिर राष्ट्रपति की साढ़े छै लाख की मर्सीडीज़ के ख़िलाफ ?" वे झोले में बंडल तलाशने लगे।

"मैं पर्चे नहीं चिपका रहा था।"

वे निरुत्साहित हो गये। ऐसा लगा। बंडल से बीड़ी निकाल कर उन्होंने

फिर तीली घिसी। मैंने देखा उनका चेहरा एकदम शान्त हो गया था। हम चुपचाप रेत पर बैठे हुए अँधेरे में बीड़ी के कश लेने लगे।

"इसका मतलब हुआ तुम्हें व्यवस्था से कोई शिकायत नहीं। तुम कांग्रेसी हो ?" उन्होंने एक-एक शब्द तौल-तौल कर कहा।

"है। मगर वोट के अलावा हमारे पास कौन-सा हथियार है ?" मैंने दबी ज़बान से कहा।

वे उत्साहित होकर मेरे क़रीब खिसक आये और बताने लगे देश की हर गड़बड़ी के लिये व्यवस्था किस तरह ज़िम्मेदार है। फिर वे अपने बारे में बताने लगे। उन्होंने बताया कि उनके पिता को ग़बन के आरोप में फँसा कर जेल भेज दिया गया है। वे एक प्राइवेट स्कूल में अध्यापक थे। मैनेजर और प्रिंसिपल मिलकर स्कूल के बिल्डिंग फन्ड का पैसा खाते थे और अध्यापकों को तीन-तीन माह का वेतन नहीं मिलता था। उन्होंने विरोध किया तो उन पर अनुशानहीनता और विद्यार्थियों को भड़काने का आरोप लगाकर सस्पेन्ड कर दिया। एक रात उन्होंने फैसला कर लिया था कि पिता के अफ़सर मैनेजर और प्रिंसिपल को मारकर फ़रार हो जायेंगे। पर वाद में उन्होंने सोचा कि इससे चीज़ों में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने का। और फिर एक दिन उन्होंने इस सारी गन्दगी से निपटने की योजना बना डाली। उन्हें पता है कि देश इतिहास के मोड़ पर खड़ा है और चीज़ें एक महान् परिवर्तन की प्रतीक्षा में खड़ी हैं। पर चूंकि हर परिवर्तन किसी की एजेन्सी के माध्यम से आता है, उन्होंने इस भूमिका का वरण कर लिया। इसके बाद उन्होंने एक नयी व्यवस्था की चर्चा की जिसमें कोई 'सफ़र' नहीं करेगा... उन्होंने सोशल जस्टिस का अर्थ समझाया। फिर उन्होंने अपनी योजना की व्याख्या की जो तीन चरणों में पूरी होने को थी। उन्होंने 'नेमेसिस', 'ऐतिहासिक अनिवार्यता', निहित स्वार्थ, जन-शक्ति, मास-साइकोलौजी, प्रोपेगन्डा, नारों, झंडे के महत्त्व को समझाया था। फिर उन्होंने 'आइडियल' के बारे में बोलना शुरू कर दिया...'आइडियल गाइडिंग स्टार की तरह होता है जो अँधेरे में रास्ता दिखाता है।"

मुझे लग रहा था, मैं प्रभावित हो रहा हूँ। कुछ देर तक मैंने मुस्तैदी से उनके प्रभाव को रेज़िस्ट करने की कोशिश की। पर लगा था उनके प्रचन्ड व्यक्तित्व के आगे मेरी सारी फैन्सें चरमरा कर टूट रही हैं। परेशान होकर होकर मैंने जेब से एक टाफ़ी निकाली और मुंह में डाल ली। (प्रेमिका टाफ़ियों की शौकीन थी। उसकी यह वचकानी हरकत मुझे लाड़ से भर देती थी) चलते वक़्त मैंने प्रेमिका के लिए एक पान वाले की दुकान से एक रुपये की दस टाफियाँ खरीदी थीं। उसके यहाँ से वापस आते वक़्त पता

नहीं कैसे दो टाफ़ियाँ जेब में छूट गई थीं और मैं उनके प्रभाव के सामने अपने को खुला छोड़कर टाफ़ी को चिगलने लगा।

"तुमने चे ग्वेवारा का नाम सुना है ?" उन्होंने फिर पूछा।

बग़ैर जवाब दिये मैं टाफ़ी चिगलता रहा और प्रेमिका की याद करता रहा। उसके प्रभाव को बर्दाश्त कर पाने का मुझे यही एक तरीक़ा समझ में आया।

"फीडेल कास्त्रो ?"

मैं टाफ़ी चिगलता रहा।

'मिकेल देब्रे ?" वे मेर अज्ञान से प्रोत्साहित हो रहे थे।

मैं टाफ़ी चिगलता रहा। मेरी समझ में आ रहा था कि प्रेमिका क्यों हर बार मुझसे टाफ़ियों की फरमाइश करती है।

"देब्रे ?"

"ऊँहूँ...।" इस बार मैंने सिर हिलाया।

"चारु मजूमदार ?"

"नहीं", मैं परेशान होने लगा था, टॉफ़ी के बावजूद।

"नरेन्द्र मित्र ?" उन्होंने बहुत धीमे से पूछा।

"आप नरेन्द्र मित्र हैं ? 'मैंने याद करते हुए कहा, "किसी से आपका नाम सुना था। आपने कहीं भाषण किया था।"

"सो यू नो मी...।" लगा वे प्रसन्न हो गये। "सो दे आर गिविंग मी पब्लिसिटी", वे चुप हो गये। लगा वे गहरे सोच में डूब गये।

"मैंने सामाजिक परिवर्तन के लिए एकदम नई पद्धति का आविष्कार किया है, सबसे अलग...।" कुछ देर बाद उन्होंने अतिशय गम्भीरता से कहा, "तुम देखोगे ?"

उन्होंने झोले से मोमबत्ती निकालकर जलाई। फिर एक गुड़ामुड़ी कागज़ निकाला। उस पर अजीब क़िस्म की टेढ़ी-मेढ़ी आपस में गुँथी हुई रेखायें खिची हुई थीं। कई जगह लाल स्याही से हल्के-हल्के लाल निशान बने थे।

"जानते हो ये क्या हैं ?"

मैं उनका गरिमा-मंडित चेहरा देखने लगा।

"यह एक तिलिस्म है। मैंने इसे तोड़ने का तरीक़ा सोच निकाला है।"

"तिलिस्म ?"

"तुमने चन्द्रकान्ता सन्तति पढ़ा है ?" उन्होंने पूछा।

"उँहूँ।" मैंने सिर हिला दिया।

"भूतनाथ, रोहतास-मठ ?"

"नहीं।"

"वीरेन्द्र वीर, नरेन्द्र मोहनी।"

"नहीं पढ़े।"

"तब तुम्हें तिलिस्म के बारे में समझाना मुश्किल है।" वे नक्शे पर झुक गये। फिर उन्होंने जेब से पेंसिल निकाली और नक्शे पर कुछ और निशान बनाये।

"तुम समझो यह शासन एक तिलिस्म है...एक दुर्ग...। जो लोग इस तिलिस्म के मालिक हैं वे लोग जो भी चाहते हैं वही दिखता है, जब कि असलियत एकदम भिन्न होती है। मसलन देश-प्रेम, राष्ट्रीयकरण, समाजवाद एक मिथ है। अब तुम किसी से ये बात कहोगे तो वह तुमसे लड़ने को तैयार हो जायेगा। तिलिस्म के प्रचार-विभाग का काम होता है 'मिथ' फैलाना। यह काम अफ़वाह फैलाने जैसा होता है। दूसरा विभाग होता है क़ानून का। तिलिस्म का मालिक सारे क़ानूनों को तोड़ता हुआ दूसरों द्वारा उन क़ानूनों का पालन कराता रहता है। तीसरा होता है इन्टैलीजेन्स.. इस विभाग के द्वारा तिलिस्म का मालिक अपने हर विरोधी पर नज़र रखता है और जिससे कोई खतरा देखता है उसे किसी एक मिथ की ओट में ले जाकर ख़त्म कर देता है। अपने देश में ऐसी हत्याओं के बहुत से उदाहरण मिल जायेंगे। 'मिथ' के लिए एक और टर्म है, आइडलस ऑफ़ द मार्केट प्लेस। तुमने सोल्ज़ेनित्सिन का कैन्सर वार्ड देखा...?"

"नहीं।" मैंने सिर हिलाया।

"सबसे पहले बुतों को तोड़ना है। वी हैव टु डिस्ट्राय द आइडल्स ऑफ़ द मार्केट प्लेस...। एक मिथ को परास्त करने के लिए एक दूसरी उससे शक्तिशाली मिथ चाहिये।"

"हाँ-हाँ," मैं उनकी बात समझ रहा था।

"मैंने वह मिथ तलाश ली है।" उन्होंने मुसकराकर झोले की तरफ इशारा किया। मैं दिलचस्पी से झोले की तरफ देखने लगा। वह कैन्वास का एक निहायत पुराना झोला था। उसका पेट फूला हुआ लगता था। इसके भीतर कागज़, किताबें और लत्ते भरे होंगे। कुछ देर वे सन्तोष से झोले की तरफ़ देखते रहे।

"मैंने एक विस्फोट तैयार किया है। अब बस एक सुरंग खोदने की ज़रूरत है जो...।" उन्होंने नक्शे के बीचों-बीच बने एक गोल निशान पर उँगली रखकर बताया, "इस जगह के नीचे तक पहुँचे...। और बस।" उन्होंने प्रसन्न होकर बच्चों की तरह चुटकी बजाई।

"यह काम मुश्किल है", मैंने शंका प्रकट की।

"मुश्किल नहीं है। इसी शहर में सैकड़ों लोग ऐसे मिल जायेंगे जो पेट भर नहीं खाते।" उन्होंने कहा।

"उन्हें खिलाने को खाना कहाँ से लायेंगे ?"

"उनका पेट भर जायेगा तो उन्हें सुरंग खोदने की ज़रूरत नहीं रह जायेगी। अपनी संस्कृति की यही तो विशेषता है। हमें पता है करोड़ों अपनी-अपनी जगह पर असंतुष्ट हैं। हमें उनके असंतोष को हिंस्र नफ़रत में बदलना है—एक हिस्टीरिया पैदा करना है। हर बड़ी क्रान्ति का जन्म घृणा से होता है...।" वे सर्वज्ञ होने के भाव से मुस्कराये। "इसके बाद एक नयी संस्कृति की शुरुआत होगी। मानवतावादी संस्कृति।"

मैं उनके प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो रहा था। मुझे लग रहा था, मैं एक महान् युग-दृष्टा के सामने बैठा हूँ।

"आदमी को अपने को किसी बृहत्तर अर्थ से जोड़ना होता है, उसी में मानव-जीवन की सार्थकता होती है।"

न समझते हुए मैंने सिर हिलाया।

"तुम्हें पैम्फ़लेट चिपकाने का काम शुरू करना पड़ेगा।" उन्होंने कहा। मैंने आँखों द्वारा सहमति प्रकट की।

"मैं परकोटे पर पैम्फ़लेट चिपका रहा था कि पुलिस वाले आ गये।" उन्होंने लम्बी साँस छोड़ी।

मैंने इस बार थूक के साथ टाफ़ी गुटक ली। घुलते-घुलते वह कागज़ की तरह हो गई थी।

"तुम्हारा काम फ़िलहाल आसान है। 'इन्टैलीजेन्स' विभाग आजकल यह पता लगाने में व्यस्त है कि अमुक प्रदेश में वोटर्स का मूड क्या है और वह चुनाव कराने की सलाह दे या न दे।" उन्होंने फिर कहा।

"फिर भी हमें एक पूरी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ना है।" मैंने शंका प्रकट की।

वे कुछ देर तक मुझे स्नेह से देखते हुए रहस्यभरी मुस्कान मुस्काते रहे, फिर रहस्य को खोलते हुए से बोले, "हम इतिहास की तरफ़ हैं।... हमने ऐतिहासिक भूमिका का वरण किया है।"

मैं बुरी तरह महसूस कर रहा था, उन पर अपनी घोर श्रद्धा प्रकट करनी ही चाहिए। मेरी जेब में एक टाफ़ी और बची थी। मैंने झिझकते-झिझकते टाफ़ी को जेब से निकाला और उनकी हथेली पर रख दिया। कुछ देर तक वे उसे कौतुक से देखते रहे, फिर एक झटके से मुँह में डालकर कागज़ समेटने लगे, "हमें वक़्त बर्बाद नहीं करना चाहिए।" नक्शा तह करके झोले में रखने के बाद उन्होंने मोमबत्ती को बुझाया और उठ खड़े

हुए। "अच्छा...", उन्होंने कुछ ऐसी जल्दबाज़ी में कहा जैसे कोई बहुत ज़रूरी काम याद आ गया हो। सहसा वे मुड़े और चल दिये। सुबह के झुटपुटे में उनके ढीले-ढाले व्यक्तित्व और उनके हाथ के तिलिस्मी झोले को मैं ग़ौर से देखता रहा।

हम शहर के परकोटे के बाहर एक सुनसान सड़क पर आ गये थे। मेरे दिमाग़ में पुलिस का सिपाही, टोकरे वाला और पॉलिटीकल सफ़रर घूम रहे थे। मैं तय करने की कोशिश कर रहा था, उनके साथ क्या हुआ होगा।

"आज रात को पैम्फ़लेट चिपक जाना चाहिए," उन्होंने कहा। "काम टलता जा रहा है।"

"अच्छा।"

"दूसरे चरण में हमें बुतों का सफ़ाया करना है...। तीसरे में सुरंग से होकर बिस्फोटक द्वारा तिलिस्म को उड़ा देना है।"

"हाँ...हाँ...", मैं ऊब रहा था।

हम एक खपरैल वाले होटल के पास आ गये थे। होटल के दरवाज़े पर अन्नपूर्णा हिन्दू होटल का साइनबोर्ड लटक रहा था। भीतर भट्टी सुलग रही थी जिसका भूरा-काला धुआँ खपरैल में से होकर निकल रहा था।

"आओ...!" उन्होंने कहा।

हम भीतर दाखिल हो गये। वह एक कच्चे फ़र्श वाला कमरा था। दरवाज़े पर पुरानी धोती का परदा झूल रहा था। पीछे बग़ैर सलाख़ों वाली एक खिड़की थी जिससे पिछवाड़े के आम के पेड़ और गंदी पोखर दिखती थी। हमने हाथों से कुर्सियों की धूल झाड़ी और आसीन हो गये। होटल की मालकिन तगड़े मगर कसे बदन वाली तेज़-तर्रार महिला थी। उसने सफ़ेद धोती और लाल रंग का ब्लाउज़ पहन रखा था। ब्लाउज़ के भीतर से उसकी ब्रे़सियर की मैली पट्टी झाँक रही थी। हमें आया देखकर वह अपने भारी नितम्ब हिलाती हुई टेबिल पर दो गिलास पानी रख गई। फिर भट्टी के पास पड़ी चारपाई पर जाकर पसर गई।

"हमें इस तिलिस्म को तोड़ना है। मेरी योजना में कोई खामी नहीं है। इट विल सक्सीड विद मैथेमेटीकल एक्यूरेसी," उन्होंने कहा। फिर हम कुछ देर को चुप हो गये। उस बीच हमने एक-एक गिलास पानी पिया। दो-दो बीड़ियाँ पीं और फिर ख़ाली नज़रों से एक-दूसरे के चेहरे देखने लगे।

होटल के दरवाज़े पर दो लड़के प्रकट हुए। उन्हें शायद इन्हीं की

प्रतीक्षा थी, "हल्लो प्यारो", वे कुर्सी से चहके।

"हल्लो गुरु...अभी एक मिनट।"

गोरा लड़का दरवाज़े पर खड़ा था। साँवला रिक्शेवाले के पैसे चुका रहा था। पैसों के ऊपर झगड़ा हो रहा था। रिक्शेवाले का कहना था जब डेढ़ रुपया तय हुआ था तो एक रुपया क्यों दिया जा रहा है। कुछ देर की बहस के बाद लड़के युवा-आक्रोश से खौलने लगे और गुंडों जैसी गालियाँ और धमकियाँ देने लगे। अन्त में रिक्शेवाला एक ही रुपया लेकर अपना रिक्शा लेकर भाग खड़ा हुआ।

मैंने लड़कों को ग़ौर से देखा। उनकी उम्र १८-२० के बीच रही होगी। उन्होंने चमाचम सफ़ेद और चुस्त कपड़े पहन रखे थे। उनकी दाढ़ी-मूँछें निकल रही थीं। गोरा वाला जिसकी मसें ज़्यादा भीग चुकी थीं मूछों की नोकों को ऐंठे हुए था। उसके बालों का एक मोटा-सा छल्ला माथे पर पड़ा हुआ था। साँवला वाला लड़का अपेक्षाकृत दुबला और नाटा था। मगर उसकी आँखें बिल्लियों जैसी तेज़ थीं। वह गोरे से ज़्यादा चालाक दिखता था।

"ये मेरे चमचे हैं।" उन्होंने खुफ़िया अन्दाज़ में मुझे बताया। "हर महापुरुष के चमचे हुआ करते हैं। बग़ैर चमचों के तुम महापुरुष की कल्पना ही नहीं कर सकते।"

लड़के हमारी तरफ़ आने लगे।

"तुम्हारी प्रेमिका के क्या हाल है?" उन्होंने प्रसन्न होकर गोरे से पूछा।

"ठीक है गुरु...।" गोरे ने कहा और उनकी बग़ल वाली कुर्सी पर बैठ गया। वे अभी तक गोरे के चेहरे को मंत्रमुग्ध होकर देखे जा रहे थे। पहले तो गोरे ने उनको बर्दाश्त करने की कोशिश की फिर वह लड़कियों की तरह शर्माने लगा। मेरी समझ में फ़ौरन आ गया कि उसने मूँछों को क्यों ऐंठ रखा है। साँवला अभी तक गर्म था, "गुरु! ये साले रिक्शेवाले बड़े हरामी लोग होते हैं।"

"दो तमाचे क्यों नहीं दिये साले को," उन्होंने कहा।

"आर्गेनाइज़ेशन की सदस्यता में कोई वृद्धि हुई?" उन्होंने फिर पूछा।

"हुँहूँ...", साँवले ने बताया। "बल्कि दो सदस्यों को कल पुलिस पकड़ ले गई। वे जुए का अड्डा चलाते थे।"

"कोई बात नहीं," उन्होंने बेफ़िक्री से कहा और गोरे की तरफ़ मुख़ातिब हो गये, "तुम्हारी प्रेमिका...?"

"उसके बाप का तबादला होने वाला है," गोरा संजीदगी से बोला। "उसे रुकवाना पड़ेगा। वर्ना मैं तबाह हो जाऊँगा।"

"हो जायेगा। छोटी-सी बात है, आज ही एस० डी० एम० को फ़ोन करवा दूंगा।"

पता नहीं कहाँ से एकाएक सैकड़ों मक्खियाँ वहाँ आ गई थीं। हमें इसका एहसास तब हुआ जब उन्होंने कोई कागज़ निकालने के लिए अपना झोला उठाया। झोले से उड़ कर वे हमारी टाँगों, हाथों, गर्दन, और बालों पर बैठने लगीं !

"तुम्हारे यहाँ मक्खियाँ बहुत हैं, अन्नपूर्णा।" उन्होंने कहा और वे हाथ से उन्हें पकड़ कर मसल-मसल कर फेंकने लगे। घायल मक्खियाँ बिल-बिलाती हुई फ़र्श पर रेंगती हुई हमारी टाँगों और मेज़ के पावों पर चढ़ने लगीं। कुछ ही देर में मक्खियों की संख्या काफी कम हो गई।

"ह्वेन वी डू समथिंग वी डू इट विद डिटरमिनेशन।" उन्होंने गर्व से कहा।

"इसका कहना है कि प्रधानमंत्री की लोकप्रियता क्रान्ति को पीछे धकेल रही है !" गोरे ने साँवले की तरफ़ इशारा कर कहा।

"इतिहास की गति को कोई नहीं रोक सकता। क्रान्ति आयेगी और समय पर आयेगी। ह्वेन थिंग्स आर राइट फ़ार इट।" उन्होंने विश्वास-पूर्वक कहा।

"नेशनल रोलिंग मिल वालों ने स्ट्राइक का नोटिस वापस ले लिया।" साँवले ने सूचना दी।

वे निराश दिखे, "देखा ?"

फिर वे गोरे पर लाड़ उँड़ेलते हुए बोले, "तुम्हारी प्रेमिका के बाप का तबादला रुक जाएगा।"

जिस तरह से वे उसे देख रहे थे उससे गोरा शर्माने लगा। उसके उस तरह से शर्माने के साथ उसके चेहरे पर मूँछों की उपस्थिति विचित्र लगी।

"इस साल पास हो जाना चाहिए !" साँवला लगातार चिन्तित दिख रहा था !

"हो जाओगे...मेरी पहुँच बहुत ऊपर तक है।" उन्होंने झिड़का। फिर वे भारतीय संस्कृति की विसंगतियों पर भाषण करने लगे।

"हमें क्या कहते हो," दरवाज़े पर अन्नपूर्णा खड़ी थी। वह उकताई हुई दिख रही थी।

कुछ देर सब के सब मुँह चुराते हुए एक दूसरे के चेहरे देखते रहे। अन्त में वे बोले, "चार जगह ठर्रा ले आओ। पर देखो उसमें पानी मत मिलाना, डार्लिंग," वे उसकी तरफ़ चापलूसी से मुस्कराये।

"साथ में चार जगह कलेजी आधी-आधी प्लेट।" गोरा चहका।

मगर अन्नपूर्णा अपनी जगह बग़ैर जुम्बिश किये उन्हें घूरती खड़ी रही।

"लाओ," साँवला थोड़ी-सी तेज़ आवाज़ में बोला।

"पैसे कौन देगा ?"

"पैसे मिल जा । तुम लाओ," उन्होंने उसे टालना चाहा।

"तुम्हारे नाम ीस रुपया अस्सी पैसे अभी तक पड़े हैं।"

उनका चेहरा रंग पड़ने लगा। वे झेंपते हुए बोले, "सब मिल जायेंगे।"

सहसा वह आपे से बाहर हो गई, "जेब में पैसे नहीं तो कोई दूसरा अड्डा तलाश लो।"

वे भड़क कर उठ खड़े हुए। हमने उनका अनुसरण किया।

"क्या कहा?" वे आपे से बाहर होकर चीख़े और लपक कर उससे गुंथ गये। अन्नपूर्णा ने झपटकर बुशर्ट का कालर पकड़ लिया और उनकी बहन के लिए गंदी-गंदी गालियाँ बकने लगी।

"यहाँ से तुम्हारा टीम-टाम उखड़वा कर न फिकवा दिया तो कहना। साली दिन को होटल चलाती है, रात को चकलाख़ाना...।" वे क्रोधित हो गये थे। उनके मुँह से थूक उचट कर उनके हाथों और कन्धों पर गिर रहा था।

"चल-चल हिजड़े...," अन्नपूर्णा उत्तेजित नहीं थी। शान्त थी। उसे अपनी और उनकी ताक़त का एहसास था।

"क्या...?" उन्होंने हमारी तरफ़ देखकर अपना रहस्यमय झोला हवा में घुमाया। पर हमें लग रहा था अन्नपूर्णा हम चारों पर भी भारी ही पड़ेगी इसलिए हम सिर झुका कर ज़मीन कुरेदने लगे।

"मैं बता दूँगा...," अपने को झटके से छुड़ाकर वे चीख़े। उन्होंने एक बार फिर अपना रहस्यमय झोला हवा में घुमाया।

पर हम जानते थे झोले में रखे बहुमूल्य कागजों का उन्हें खयाल होगा और उन्हें अन्ततः ग़म खाना पड़ेगा।

•

क्षयग्रस्त

लगा था जैसे वह निहायत पतली रस्सी के सहारे हवा में गोल-गोल चक्कर काट रहा हो। नीचे भयानक खड्ड हो, अथाह गहरा और अँधेरा। फिर हवा में एक दुबला-पतला हाथ प्रकट होता दीखा था। छुरी थामे रस्सी की तरफ़ बढ़ता हुआ। आहिस्ता-आहिस्ता।

वह अकबका कर उठ बैठा था और कमरे में फैले हुए अँधेरे में आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा था। उसका शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। अपने को प्रकृतिस्थ करने की गरज़ से उसने अपनी पसलियों और चेहरे पर हाथ फेरा था। फिर उठकर स्विच दबा दिया था। रोशनी होते ही पत्नी दीखी थी। उनींदी हालत में बच्चे के सिरहाने पर झुकी हुई।

"तुमने बुलाया था ?" उसने पूछा था।

पत्नी ने उसकी आवाज़ सुनकर आँखें खोलीं तो उसने अपना प्रश्न दोहरा दिया था।

"नहीं तो...।" पत्नी ने कहा था। उसके चेहरे पर तीन रातों से ठीक से न सो पाने की खुमारी थी। उसके सिर से धोती का पल्ला खिसककर नीचे आ रहा था। बाल घोंसले की शक्ल में माथे के ऊपर जम गये थे। चेहरा पसीने के कारण लिज़लिज़ा और भद्दा दीख रहा था। पत्नी की बिगड़ी हुई शक्ल देखकर उसे अपने जागने की कोफ़्त हुई थी। उसने बढ़कर हाथ से बच्चे के बदन को टटोला था जो जल रहा था।

"टेम्परेचर काफ़ी है...।" उसने पत्नी से कहा था।

"हाँ...।" पत्नी फिर ऊंघ गई थी।

"डाक्टर ने क्या बताया...?" उसने फिर पूछा था। दरअसल वही बातचीत का सिलसिला बनाये रखना चाहता था। कुछ देर पहले का एहसास अभी तक उसकी धमनियों में बज रहा था। वह उससे निजात चाहता था।

पत्नी कुछ न बोली तो वह आँगन में निकल आया। अपने पैरों की आहट उसे बहुत तसल्ली दे रही थी। घिनौली में पहुँचकर उसने अपने चेहरे को पानी के छींटें दिये थे। दो-तीन घूँट पानी के पिये थे और महसूस किया था कि बेहतर हो रहा है। वापस आने पर पत्नी सो चुकी थी। उसकी वह मुद्रा उसे बेहद उबाऊ और बर्दाश्त के बाहर लगी थी। उसने उसे कंधे से पकड़कर झिझोड़ दिया था। पत्नी आँखें खोलकर न समझने की हालत में उसकी तरफ़ देखने लगी थी। उसके चेहरे से चिपका हुआ भद्दापन ज्यों-का-त्यों बरक़रार था।

"क्या बात है...?" पत्नी ने पूछा था।

"तुम एकदम बदतमीज़ हो...।" वह बड़बड़ाया था। "सोने का सलीक़ा भी तुम्हें नहीं मालूम।"

"मेरा जी घबड़ाता है—" पत्नी ने फिर आँखें मूँद ली थीं। "डाक्टर ने जो दवाइयों का पर्चा दिया था—?"

"तनख़्वाह मिलने की अभी कोई उम्मीद नहीं। हैडक्लर्क ही बता रहा था।" उसने कहा था।

"उसे न दवा मिलती है न फल—।"

उसने पत्नी की तरफ़ देखते हुए उन औरतों के बारे में सोचना शुरू कर दिया था, जो सोते समय और भी ज़्यादा आकर्षक हो जाती हैं। उसे अफसोस हुआ था कि उसकी पत्नी उनमें से नहीं।

"तुम गँवार ही रहोगी।" पता नहीं वह क्या कहना चाहता था। "सोचती हूँ कल ख़ैराती अस्पताल में दिखा लाऊँ।" पत्नी ने कहा था और चादर उघाड़कर बच्चे के पैर को छुआ था।

"देखो किस क़दर जल रहा है।"

"साले सब चोर हैं। डाकू हैं सब के सब—।" वह बड़बड़ाया था।

"लल्ला कहते थे वही दवाएँ भी दिलवा देंगे—।" पत्नी ने फिर आँखें मूँद ली थी।

लल्ला से मतलब उसके साढ़ू-भाई से था, जो सरकारी अस्पताल में कम्पाउंडर था और उसकी पत्नी को 'भाभी' कहकर बुलाता था।

"यहाँ आया था क्या ?" उसने पूछ लिया था। महसूस किया था, वह ईर्ष्याग्रस्त हो रहा है।

"शाम को आये थे।" कहकर पत्नी ने आँचल से चेहरा पोंछ लिया था और बालों को समेटकर सिर को धोती के पल्ले से ढँक लिया था। पत्नी अब सहज लग रही थी। उसने पाया था कि वह उस पर सन्देह कर रहा है। उसने उन तमाम बातों के बारे में सोच डाला था, जो उसकी अनुपस्थिति

में उन दोनों के बीच रह सकती थीं और अपने को अजीब तरह से उत्तेजित महसूस किया था। उसे याद आया कि लल्ला के आते ही पत्नी किस तरह उल्लास से भर जाती है। किस तरह उसके साथ बात करते वक्त उसके चेहरे पर 'प्यारापन' छा जाता है। किस तरह वह छिपकर आइने के सामने जा खड़ी होती और चेहरे पर पाउडर मल आती है। उनके एकान्त में होने की कई तसवीरें उसके दिमाग़ में कौंधी थी। हँसने-बतियाने से लेकर एक साथ लेटे रहने तक। उसने पाया था कि उसका बायाँ पैर तेज़ी से काँप रहा है और वह ईर्ष्या और दिलचस्पी से मिली-जुली मन:स्थिति की गिरफ़्त में है। उसे अपनी तरफ़ इस तरह घूरता पाकर पत्नी सहम गई थी। फिर उसके चेहरे की वही सख्ती और हिक़ारत लौट आई थी तो वह पशोपेश में पड़ गया था।

"यह अच्छा है बच्चे के लिए। न खुद कुछ करोगे न किसी को करने दोगे—।" पत्नी ने कहा था। उसे स्पष्ट एहसास हुआ था कि पत्नी के स्वर में बचाव की कोशिश है। इससे उसका सन्देह पुख्ता होने लगा था। वह बच्चे की तरफ़ से और भी निरपेक्ष हो गया था।

"ठीक है। ठीक है। अब यह काम तुम करो—।" उसने चालाकी से कहा था और अपने को हल्का महसूस किया था।

पत्नी खाट की पाटी पर सिर टेककर सिहरने लगी। बच्चे के होंठ फड़फड़ाये तो उसने पानी का गिलास उसने मुँह से लगा दिया।

"कल फिर कोशिश करेंगे।" उसने पत्नी को दिलासा के लिए कह दिया था। "तीन महीने की तनख़्वाह टाँग रखी है और यहाँ बच्चा मर रहा है।"

"जैसे बच्चा सिर्फ़ मेरा हो।" पत्नी जाने क्या समझी थी। 'क्या? सचमुच'। उसने सोचा था। वह आज तक महसूस नहीं कर पाया कि बच्चे का बाप वही है और इस नाते उसकी कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं। यह सोचकर उसे अजीब लगता था कि वह भी अपने बच्चे का उसी तरह से बाप है, जैसे दूसरे अपने बच्चों के होते हैं। वह देखता कि ये लोग किस तरह अपने बच्चों के लिए परेशान रहते हैं, त्याग करते हैं, अपना आराम हराम करते हैं। उनके भविष्य के बारे में सोचते हुए दुबले होते रहते हैं। उनके कैरियर के विषय में चिन्तित रहते हैं। उनके लिए चोरी करते हैं, शोषण करते हैं। रिश्वतें देते और लेते हैं। उसे लगता दरअसल वह बाप-साँचे में बिलकुल ही नहीं अँटता। यह भूमिका उसके ऊपर ज़बरदस्ती थोप दी गई है। जिसे न ही वह निभा पाता है, न फेंक पाता है। हाँ वह इस औरत का पति ज़रूर है जो इस बच्चे की माँ है और इस रिश्ते से वह भी कुछ होता है। वह इस

रिश्तों को कभी साफ़-साफ़ नहीं समझ पाता। टटोलकर पहचान पाता है। शुरू में जब पत्नी ने बच्चे के आने की सूचना दी, तो वह घबराहट से भर उठा था। उसके आगे उन तमाम पिताओं के निरीह दयनीय चेहरे तैर गये थे जो अपने बच्चों के कारण हमेशा किसी न किसी झंझट में फँसे रहते थे और तबाह थे। उसकी धारणा बन गई थी कि बाप होना काफी जोखिम का काम है। पत्नी जो अपने प्रसव के कारण पहले से ही डरी हुई थी उसकी शक्ल देखकर और भी घबरा गई थी।

"बुरा हुआ," उसने कहा था। उसे बच्चे के साथ पैदा हो जाने वाली तमाम परेशानियों और सहसा बढ़ जाने वाले खर्चे का खयाल आया था। सबसे ज़्यादा तकलीफ़ यह सोचकर हुई थी कि पत्नी अब लड़की न रहकर औरत बन जाएगी। (उसका ख़याल था कि माँ कोई औरत ही हो सकती है) और अब वह उसके बारे में रोमांटिक तरीक़े से नहीं सोच सकेगा। साथ ही उसे राशन के लिए लम्बे 'क्यू' में लगे पार्ट-टाइम करते, बाज़ार की गुमटी-नुमा दूकानों से परचूनी का सामान ख़रीदते, रिक्शे वालों से दो-दो पैसों के लिए गला फाड़कर बहस करते और चीखते हुए लोगों का खयाल आने लगा था। उसे लगा कि ये लोग सिर्फ़ पिता हो सकते हैं। हर जगह हर काम में अपने बच्चों के नाम पर अतिरिक्त सहूलियत और सुविधा के लिए भीख माँगते, झगड़ते, चीखते हुए, दयनीय और हास्यास्पद शक्ल के लोग। ये पिता के अलावा और कुछ नहीं हो सकते। बच्चा हो जाने पर पत्नी के व्यवहार में अजीब तरह का ठंडापन आ गया था। उसने क्षोभ के साथ नोट किया था कि पत्नी के शरीर का कसाव ढीला पड़ गया है और वह दिन-ब-दिन थुल-थुल होती जा रही है। उसने दो-एक बार उसे इस तरफ़ से आगाह भी किया। मगर पत्नी ने कोई ध्यान नहीं दिया। एक दिन उसे हैरत हुई थी कि बच्चा किस तरह अपनी तमाम ज़रूरतों के सहित उसकी निहायत व्यक्तिगत ज़िन्दगी में सेंध मारकर बैठ गया है। उसने पाया था कि बच्चा उसके तमाम निजी मामलों में दखलन्दाज़ी करने लगा है। और अब वह अपने निर्णयों में उतना स्वतन्त्र नहीं रह गया। छुट्टी के दिन पत्नी बड़े प्रेम से बच्चे को काजल लगाकर उसकी गोद में छोड़ जाती, तो वह यह महसूस करने की कोशिश करता कि बाप होना कैसा होता है। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी वह अपने और बच्चे के बीच कोई ऐसा सूत्र तलाश पाने में असमर्थ रहता जिसकी वजह से वह उसके प्रति स्वाभाविक प्रेम और कर्त्तव्य भाव से भर जाये और उसके लिए बड़ा-से-बड़ा त्याग करने को तत्पर हो जाये। उसे कोफ़्त होती कि उसके भीतर ज़रूर उस तत्त्व की कमी है, जो आदमी को बापू होने की गरिमामय अनुभूति से भर देता है।

रात को लौटते वक़्त वह अक्सर देर कर देता। वह चाहता था कि जब वह घर पहुँचे बच्चा सोया हुआ मिले। कुछ दिनों से वह महसूस कर रहा था कि उसकी सेहत गिरती जा रही है और वह खुद के प्रति उदासीन होता जा रहा है। जैसे पहले वह खाना खाने के बाद नियम से पान खाया करता था। हमेशा धुले और क्रीज़दार कपड़े पहनता था। शाम को रोज़ नुक्कड़ के चायघर में एक कड़क चाय पीता था। अब ये सारी आदतें धीरे-धीरे छूट गई थीं। अब वह एक ही पैन्ट-बुशर्ट को कई दिनों, यहाँ तक कि हफ़्ते भर तक रगड़ता रहता था। चाय, पान-तम्बाकू छोड़ दिये थे और उनके बदले अपने घर में दुबककर सुबह-शाम बीड़ी पीता रहता था। कभी-कभी उसे इस बात पर दुख होता कि अब उसने अपने बारे में सोचना एक-दम बन्द कर दिया है और हर हालत में गुज़र करने का आदी हो गया है। उसने पाया था कि उसके और गिर्द की तमाम चीज़ों के बीच एक अजीब-सी बेगानगी आ गई है। परिचितों और अपरिचितों के बीच पहुँचने पर वह बेचारगी से भर जाता है। किस तरह वह हमेशा दबा-दबा-सा रहता है। घर लौटते वक्त एक अतिरिक्त चौकन्नायत उसे घेर लेता और वह डरा हुआ होता कि आज ज़रूर कुछ अप्रत्याशित और मनहूस घटना घटेगी। पत्नी और उसके बीच हमेशा एक तनाव रहता था। उससे पहले कभी भी उसे पत्नी इतनी जाहिल, ज़िद्दी और मूर्ख नहीं लगी। उसे अचरज होता कि पत्नी के स्वभाव के ये तमाम दुर्गुण कैसे अब तक उसकी निगाह से छिपे रहे। कभी वह अपनी बदली हुई स्थिति का विश्लेषण करता और हैरत में पड़ जाता कि इस सब की जड़ में बच्चा है।

पत्नी ने बच्चे के सिर पर बड़े-बड़े बाल रख छोड़े थे, जिन्हें वह बड़े लाड़ से गूँथकर फ़ीते से बाँध देती थी। बच्चा साँवला, तगड़ा और ज़िद्दी था। वह उसे अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से घूरता, तो उसकी नज़रें उसे भीतर तक बेधती चली जातीं। वह उसे गोद में उठाता तो तो वह उसके कान पकड़कर खींचने लगता। इतने ज़ोरों से कि उसे तकलीफ़ होने लगती। इस पर वह उसे नीचे उतार देता तो वह चीख-चीख़कर रोने लगता। उत्तेजित हो रहा वह उसे हाथ से पकड़ता और घसीटता हुआ पत्नी की गोद में डाल आता और अपने को भयानक नफ़रत से भरा पाता।

एक दिन शाम का पत्नी ने बताया बच्चा बीमार है। दुपहर को तबीयत बहुत बिगड़ गई थी। डाक्टर को बुलाया था। सुनकर वह इलाज पर आनेवाले खर्च का अनुमान लगाने था।

"डाक्टर कह गया है कि कम से कम हफ़्ते भर नियम से दवा देनी पड़ेगी।" पत्नी ने कहा था।

"डाक्टरों का क्या है। ये तो साले चाहते ही हैं कि लोगों को बीमार बनाये रहें और पैसे ऐंठते रहें।" वह बिगड़कर बोला था।

"तुम होते तो देखते। उल्टियाँ हुई थीं। फिर आँख की पुतलियाँ चढ़ गई थीं। सारा बदन सुन्न पड़ गया था।"

"डाक्टर को बुलाने कौन गया था ?" उसने पूछा था। सहसा।

"लल्ला इधर से गुज़र रहे थे। वही बुला लाये थे।" पत्नी दबी ज़बान से बोली थी।

"हूँ...!" उसने सन्देह से पत्नी को घूरा था।

"ये दवाएँ और लाना है।" पत्नी ने हाथ का पर्चा उसकी तरफ़ बढ़ा दिया था।

"कहाँ से लाऊँ दवाएँ ?" वह तड़ककर बोला था, "तीन महीने से उधार माँग-माँगकर खा रहे हैं। डिपार्टमेंट वालों ने तनख्वाह रोक रखी है। डायरेक्टर, शिक्षामंत्री और मुख्यमंत्री से लेकर राष्ट्रपति तक को दरख्वास्तें दे रखी हैं। पर सुनवाई कहीं नहीं। सब जगह अँधेर मचा है साला।'

उसने पर्चे को जेब में ठूंस लिया था और दोनों हाथों से सिर थामकर बैठ गया था। जब दुबारा आँखें खोलकर देखा तो पत्नी जा चुकी थी।

चौराहे पर मुड़ते वक़्त वह तय नहीं कर पाया था कि वह सचमुच उस पीली इमारत की तरफ़ जा रहा है। मन से वह अब भी दुविधा की स्थिति में था मगर उसके पैर उसे यंत्रचालित गति से उस बिल्डिंग की तरफ़ ले गये थे। उसने हिचकते-हिचकते मेंहदी की बाड़ और फ़ैन्स से घिरे उस अहाते में प्रवेश किया था। फिर लाल बजरी की उखड़ी हुई सड़क को पार कर वह बड़े हाल के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ था। हाल एक आयताकार बड़ा कमरा था। सफ़ेदी से पुता हुआ। सामने उखड़े वार्निश और फूटे हुए काँचों वाली दो खिड़कियाँ थीं। जगह-जगह पर दीवारों का पलस्तर झड़ गया था। सीलिंग से मकड़ियों के जाले झूलते थे। रोशनदानों के काँच ग़ायब थे और वहाँ से धूप, धूल और गर्म हवा आती थी। भीतर तमाम लोग अपनी मेज़ों पर फ़ाइलों में सिर गड़ाये बैठे थे। उसने सुन रखा था कि ये किस तरह के चालू और घाघ क़िस्म के लोग हैं और मंत्रियों तथा सचिवों के आदेश के बावजूद किस तरह सारे क़ानून अपनी जेब में डाले रहते हैं और किस तरह आने वालों को मकड़ी की तरह फाँस के उसके शरीर का खून पी जाते हैं। उसे खयाल आया भी कि उसके कपड़े गंदे हो रहे हैं और दाढ़ी कई दिनों की बढ़ी हुई है। उसकी इच्छा हुई थी कि वहाँ से चला जाये। हो सकता है चला भी जाता पर तभी सामने की मेज़ पर बैठे चश्मेवाले ने उसे देख लिया था। उसका रंग काला और सिर गंदा

था। मूँछें सफ़ाचट थीं। और माथे पर बाएँ तरफ़ को एक गोमड़ निकला हुआ था। उसका चेहरा पत्थर की तरह भावहीन और सख़्त था। कुछ देर तक वह चश्मेवाले की तरफ़ देखता हुआ पैरड किए जाने के भाव से खड़ा रहा था। फिर अपने को सहन करने की कोशिश करता हुआ उसकी तरफ़ बढ़ने लगा था। नज़दीक पहुँचने पर उसके दोनों हाथों को माथे तक ले जाकर नमस्कार किया था और चुपचाप खड़ा हो गया था।

"हाँ...।" चश्मेवाले ने व्यवस्ता से अपने कंधे उचकाये थे।

"तीन महीने से तनख़्वाह नहीं मिली। पर बच्चा बीमार है...।" उसने डरते-डरते कहा था।

"तो...?"

"अभी तक पता नहीं कि तनख़्वाह क्यों रोक दी गई है। अपने काम में एकदम रेग्यूलर हूँ।"

"एज्यूकेशन में हो ?" चश्मेवाले ने ग़ुस्से से कहा था और होंठों को चोंच की तरह काढ़ लिया था।

"जी हाँ।"

"तो मेरे पास काहे को खड़े हो। मोहर्रिर सीगा से मिलो, मैं पब्लिक वर्क्स डील करता हूँ।"

"मोहर्रिर सीगा ?" उसने डरते-डरते पूछा था।

"वो देखो उधर। कोने वाली मेज़ पर। तख़्ती भी नहीं पढ़ना आता?" चश्मा वाला फिर अपनी फ़ाइल में डूब गया था।

कोने वाली मेज़ पर पहुँचकर उसने फिर दोनों हाथों को माथे से लगाकर नमस्कार किया था।

"मोहर्रिर सीगा...आप ?"

"हाँ-हाँ मेरा ही नाम है।" मेज़ वाला बाबू उसकी उतरी हुई शक्ल को घूरता हुआ खुश हो गया था। "कहिये ?"

"मेरा नाम आपको किसने बताया।" मेज़वाले बाबू ने होठ के कोने को दाँतों से दबा लिया था।

अग़ल-बग़ल की मेज़ों वाले अपना काम रोककर उसे दिलचस्पी से देखने लगे थे। वह नरवस होने लगा था।

"अध्यापक हो ?" मोहर्रिर सीगा ने पूछा था अपने साथियों की तरफ़ देखकर मुस्कराया था।

"यस माई नेम इज...।" उसे लगा था उससे ज़रूर कोई बेवकूफ़ी हो गई है। अपनी ग़लती को ठीक करने की ग़रज़ से वह अँग्रेज़ी बोला था और अपने को आश्वस्त महसूस किया था।

"तीन महीने से तनख्वाह नहीं मिल रही।" उसने अपनी बात कही थी।

"तुम्हारे नाम कई कम्पलेन्ट्स हैं। तुम्हारी फ़ाइल में डी० आई० साहब का रिमार्क है कि इनक्वायरी होने तक तनख्वाह न दी जाये।"

"ऐसा है तो क़ायदे के मुताबिक़ मुझसे जवाब-तलब किया जाना चाहिए था...। ये कोई तरीक़ा हुआ कि मुझे पता ही न चले कि बात क्या है। यहाँ बच्चा बीमार है।" वह बौखला गया था।

"हम क्या कर सकते हैं। डी० आई० से मिल लो।" मोहर्रिर सीगा निरपेक्षता से बोला था।

वह ग़ुस्से से भरा हुआ दरवाज़े की तरफ़ बढ़ने लगा था।

"ऐ सुनो।" पीछे से आवाज़ आयी थी।

"मोहर्रिर सीगा माने ?"

वह चुग़द की तरह आँखें झपकाता हुआ खड़ा रहा था।

"अध्यापक हो न ?" मोहर्रिर सीगा गर्व से मुस्कराया था।

"मैं राष्ट्रभाषा पढ़ाता हूँ", उसने हकलाते हुए कह दिया था।

"डी० आई० से ज़रूर मिल लो।"

वह घबराता हुआ बाहर निकल आया था। उसके हटते ही वे लोग अपनी बोरियत मिटाने के लिए खुलकर हँस पड़े थे। उसकी हिम्मत मुड़कर देखने की नहीं हुई थी। हालाँकि मन ही मन उसे बेतहाशा क्रोध आया था।

बरांडे में पहुँचकर उसने चपरासी के हाथ अपने नाम की चिट्ठी भेजी थी और स्टूल पर बैठकर इंतज़ार करने लगा था। कुछ देर बाद भीतर से घंटी की आवाज़ आई थी। चपरासी उसे भीतर जाने को कहकर आराम से बैठकर खैनी फाँकने लगा था।

"हूँ—!" डी० आई० उसे देखते ही ग़ुस्से से भर गया था। "रामेश्वरप्रसाद तुम्हीं हो ?"

"जी।" उसने कहा था।

"तुम्हारे कैरेक्टर रोल में बहुत ख़राब रिमार्क है।"

"जी ?"

"तुम्हारे ख़िलाफ़ गम्भीर आरोप है। इन्डिसीप्लिन, इन्सबोर्डिनेशन। विद्यार्थियों को भड़काना। भाषण देना। हड़ताल करवाना। किसी राजनैतिक पार्टी के मेम्बर हो...?"

"नहीं...। बात ये है सर। मनेजमेन्ट से मेरी बनती नहीं।" उसने सफाई देना चाही थी।

"कोई रिसाला निकालते हो ?"

"नहीं।"

"पिछले चुनाव में तुमने पैम्फलेट नहीं निकाले ?"

"नहीं।"

डी० आई० ने चपरासी को बुलाकर उसकी फाइल तलब की थी। "ये देखो" डी० आई० ने एक अखबार की कतरन मेज़ पर फैला दी थी। "सम्पादक को लिखा गया ये पत्र तुम्हारा नहीं है।"

"मुझे तरह-तरह के बहाने लेकर परेशान किया जाता है। उधर तीन महीने की तनख़ाह टँगी है। कारण भी नहीं बताया गया। ये कोई बात हुई।" वह बौखला गया था।

"ये दरख्वास्तें तुम्हारे हाथ की लिखी हुई हैं।" डी० आई० ने शिक्षा-मंत्री, मुख्य-मंत्री, राष्ट्रपति आदि को लिखी गईं उसकी दरख्वास्तें दिखाई थीं।

"हाँ।" उसे अपनी साँस रुकती हुई मालूम हुई थी।

"ठीक है। जब तक सारी बातों की जाँच नहीं हो जाती तब तक मौज करो।"

"मेरा बच्चा बीमार है। घर में एक पैसा नहीं है।" उसके स्वर में घिघियाहट आ गई थी।

"जाओ।" डी० आई० ने आदेश दिया था।

"पर इसमें ग़लत क्या है ? इंसाफ़ माँगने में क्या ग़लत है ?" वह अड़ गया था।

"ठीक है। तुम्हारी बात सुन ली।"

"मेरा बच्चा बीमार पड़ा है। मुझे रुपयों की सख्त ज़रूरत है।"

"पहले क़ानून को अपने हाथ में ले लेंगे, बाद में बहाना गढ़ेंगे। सभी ऐसा करते हैं। जाओ...।"

'अब ?' सड़क पर आकर उसने सोचा था। उसने तेज़ी से अपने मित्रों और परिचितों के नाम सोचना शुरू कर दिये थे, जिनसे उसे उधार मिल सकता था। वे सब उसी की तरह साधारण हैसियत के लोग थे। इनमें से अधिकांश से वह कुछ-न-कुछ ले चुका था। जो बचे थे उन्हें भी अब तक पता चल गया होगा कि वह लेकर लौटा सकने की स्थिति में नहीं है। और वे उसे देखते ही उससे कन्नी काटने लग जायेंगे या उल्टे अपने दुःख को लेकर बैठ जायेंगे। उसने पत्नी के बारे में सोचना शुरू किया था। वह ज़रूर कुछ न कुछ छिपाकर अपने पास रखे होगी। पर उसे शक था वह कुछ बतायेगी। वह सच्चे अर्थों में भारतीय गृहिणी थी। फिर उसके आगे बच्चे की दुबली-पतली काया तैरने लगी थी। उसे कोफ़्त हुई थी कि दवा न

मिलने के बावजूद भी अभी वह काफ़ी दिनों तक घिसटेगा। बच्चे की आँखें गढ़ों में धँस गयी थीं। गालों में झुर्रियाँ पड़ती थीं। जब वह कुछ बोलता या कराहता था तो अपनी उम्र से कई गुना समझदार लगता था। उसकी तरफ़ देखते या बात करते हुए उसे दहशत होती थी। उधर से गुज़रते वक्त वह पत्नी या खिड़की की तरफ़ देखता रहता था। कभी बच्चे की तरफ़ देखता था तो पाता था कि वह उसे लगातार घूर रहा है। महज़ इतनी-सी बात उसके भीतर भयानक तनाव पैदा कर देती थी। उसे वह कमरा, वहाँ का अँधेरा और सीली हुई बास बेहद उबाऊ लगने लगती थी। महसूस होता था जैसे उसके पसीने में कई एक कीड़े पैदा हो गये हों जो अपने गिलगिले पैरों से उसके शरीर को खोदते हुए उसके ऊपर रेंग रहे हों। शाम को साढ़ू-भाई आता तो वह अपने कमरे में बैठा हुआ अचरज से भर जाता कि वह कैसे उस दृश्य को बर्दाश्त कर लेता है। साढ़ू-भाई काफ़ी देर तक उसकी पत्नी से बतियाता रहता। खिड़की से धुएँ के रेशे बाहर आते तो वह समझ जाता साढ़ू-भाई अदा से होठों में सिगरेट दबाये बैठा होगा और पत्नी उसकी तरफ प्रशंसा से देख रही होगी। फिर पत्नी के रसोई में घुसकर स्टोव जलाने की आवाज़ आती। उसके मुँह में सुखुराहट शुरू हो जाती। ज्यादा इंतज़ार नहीं करना पड़ता। चाय बनते ही साढ़ू-भाई वहीं से बुलन्द स्वर में उसे बुलाता और चाय पीने को कहता। वह चुपचाप कुर्सी खिसका-कर बैठ जाता और बड़े-बड़े घूंट भरने लगता।

"आज तो तबीयत काफ़ी ठीक है।" साढ़ू-भाई बच्चे की तरफ़ इशारा करता। "क्यों बेटे?" वह बच्चे की तरफ़ देखता फिर उसकी तरफ़ "हाँ आँ...।" वह बेमन से कह देता। उसकी तबीयत होती कि अख़बार में पढ़े किसी उपद्रव, किसी प्रदेश की सरकार के गिरने या किसी राजनैतिक पार्टी के मैनीफेस्टो पर बहस करे। पर इन बातों के लिए साढ़ू-भाई एकदम बौड़म लगता और वह बुद्धिजीवी होने के गौरव से भर उठता।

"आप एकदम बेफ़िकर रहिये, भाई साहब।" साढ़ू-भाई दिलासा देता हुआ कहता।" मेरे रहते दवाइयों की फ़िक्र आपको नहीं करनी पड़ेगी। हाँ, अस्पताल में दवाइयाँ न हो तो मजबूरी है।"

"इनकी तीन महीने की तनख्वाह रुकी पड़ी है।" पत्नी कहती।

"हाँ", साढ़ू-भाई अफ़सोस प्रकट करता। फिर कहता, "मुझे भाभी का स्वभाव बहुत अच्छा लगता है। जो भी ज़रूरत होती है निस्संकोच कह देती है। आख़िर अपने आदमी होते किसलिए हैं ?" वह मुस्कुराता हुआ पत्नी की तरफ़ देखने लगता। पत्नी व्यस्त भाव से पंखा झलने लगती।

चाय के बाद साढ़ू-भाई उसे सिगरेट पेश करता। वह कनखियों से

पत्नी की तरफ़ देखता रहता और धोखे से उसे साढ़ू-भाई के चेहरे की तरफ़ देखता पाकर प्रसन्नता से भर जाता कि वह कितना चालाक है और कोई उसे आसानी से झाँसा नहीं दे सकता। उसे पत्नी का चेहरा अच्छा लगता। पता नहीं साढ़ू-भाई के सामने ये कौन-सा रंग उसके चेहरे पर छा जाता है।

शुरू-शुरू में जब उसे स्कल में साढ़ू-भाई के अपने घर पर उपस्थित होने का ख़याल आता था तो उसे क्रोध आने लगता था। अब यही ख़याल उसे निश्चिन्तता से भर देता है। उसे लगता अब वह इस संकट से उबरने का इन्तज़ार कर रहा है। बच्चे की बीमारी और उसके कारण घर के मनहूस वातावरण को अब वह और बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह ज़्यादातर वक्त घर के बाहर बिताने की कोशिश करता। रात को लौटने पर अक्सर उसे साढ़ू-भाई घर पर बैठा हुआ मिलता। उसे देखते ही वह उसके लापरवाह तथा 'भाभी' के प्रति ग़ैर-ज़िम्मेदार होने की शिकायत करता। फिर बच्चे की तबीयत के बारे में दो-एक जुमले बात करता और दफ़ा होता।

पर बच्चे की दशा में कोई फ़र्क नहीं : वह घिसट रहा है। साढ़ू-भाई की दवाओं और दिलासा के बावजूद। "लल्ला, अब तो इसकी हालत देखते नहीं बनती।" एक दिन उसने कह दिया था।

"हाँ, हाँ !" साढ़ू-भाई ने कहा था, "बहुत कष्ट है बेचारे को।"

"अब या तो वो ठीक हो। या..."। वाक्य को अधूरा छोड़कर वह साढ़ू-भाई के चेहरे की तरफ़ देखने लगा था।

"ठीक होगा। ठीक क्यों नहीं होगा ?"

"बात ये है कि हम बहुत मामूली हैसियत के आदमी हैं। सो अब या ये ठीक हो या...।"

"हाँ-हाँ।" साढ़ू-भाई ने उसका समर्थन किया था।

"और फिर हमारे चाहने न चाहने से होता क्या है ! भला, अपनी औलाद का कौन बुरा सोचेगा ? पर अब उसका कष्ट देखा नहीं जाता। कभी-कभी सारी रात चिल्लाता रहता है। हम सो नहीं पाते। तुम्हारी भाभी का स्वास्थ्य कितना गिर गया है ! मेरा दिमाग़ अलग ख़राब हो रहा है।"

दो-एक सहानुभूति की बातें बनाकर साढ़ू-भाई चला गया था।

वह सड़क के बीचों-बीच आ गया था। कुछ देर बाद उसे समय का ख़याल हुआ था और चौंक पड़ा था। इस वक्त तक उसे घर होना चाहिए था। वह अपनी टाँगों में कँपकँपी महसूस कर रहा था। और घर पहुँचकर लेटकर अगली योजना के बारे में सोचना चाहता था। आगे चलने पर एक जुलूस दिखा था। जुलूस के आगे एक झंडा था। झंडा उठानेवाला व्यक्ति

बीड़ी पीता हुआ अपने साथ चलने वाले से बतिया रहा था। बीच के कुछ लोगों के हाथों में दफ़्तियों पर लिखे हुए पोस्टर थे, जिससे पता चलता था कि ये लोग सरकार के किसी निर्णय के ख़िलाफ़ हैं और प्रजातन्त्रीय तरीक़े से विरोध का अभ्यास पूरा कर रहे हैं और प्रसन्न हैं। बीच में कुर्ता, पाजामा और टोपी पहने दो बड़ी-बड़ी मूछों वाले व्यक्ति ज़ोर-ज़ोर से अपनी माँगों के बारे में नारे लगा रहे थे। आस-पास के कुछ लोग बेमन से दुहरा रहे थे। कुछ लोग जुलूस की रफ़्तार तेज़ करने की कोशिश कर रहे थे। उनका ख़याल था कि धूप काफ़ी तेज़ हो रही है और इस चाल से अपने कार्यालय पहुँचने के पहले ही कुछ लोग जो अधूरे मन से शरीक़ हुए थे गर्मी का बहाना लेकर खिसक जायेंगे। यह दृश्य उसे काफ़ी दिलचस्प लगा था। उसकी इच्छा हुई थी कि उसके नेता को रोककर 'प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में शान्तिपूर्ण प्रदर्शन' की उपयोगिता पर बहस करे। पर जुलूस काफ़ी आगे निकल गया था। फिर ज़्यादा सोचने पर तो सबके सब उसे मूर्ख लगने लगे थे जिन्हें अब भी प्रधान मन्त्री के भाषणों में और किताबों में पढ़ी कुछेक बातों में भरोसा था। ये कुछ नहीं कर सकेंगे, उसने सोचना शुरू कर दिया था। क्योंकि उसके प्रदर्शन से किसी मंत्री का, सरकार का मंत्रित्व ख़तरे में नहीं पड़ सकता। इस विचार से उसे राहत मिली थी और उसने अपनी चाल तेज़ कर दी थी।

घर पहुँचने पर पत्नी आदत के ख़िलाफ़ सोने के कमरे में मिली थी। उसने बाल सँवार रखे थे और साफ़ धोती पहन रखी थी। बिस्तर की चादर में सलवटें पड़ी हुई थीं और फर्श पर सिगरेट के बुझे हुए टुकड़े फैले हुए थे। कुछ देर तक वह मूँगफलियों का ज़ायका लेता हुआ उसे घूरता-सा रहा था। पत्नी नरवस होने लगी थी।

"क्या हुआ ?" पत्नी ने पूछने के लिए पूछ लिया था।

"लल्ला आया था...?" उसने बिना भूमिका के सवाल कर डाला था। पत्नी बिना कुछ जवाब दिये तेज़ी से कमरे के बाहर हो गयी थी। वह 'प्रजातन्त्र बनाम शान्तिपूर्ण प्रदर्शन' पर सोचने लगा था।

वह हकबका कर उठ बैठा था और अँधेरे में आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा था। बिलकुल समझ में नहीं आया था कि यकायक नींद खुल जाने का कारण क्या है ? फिर उसे लगा था कि वह सोया बिलकुल नहीं था। आँखें मूँदकर थकान मिटाने की कोशिश कर रहा था। इधर एक अर्से से हर वक्त उसे थकान रहती है और आँखों में आलस्य भरा रहता है। रात को वह अक्सर चौंककर उठ बैठता है, फिर अधलेटा होकर सन्नाटे से टकराती आवाज़ों से होड़ लेता रहता है और फिर चादर से सिर ढाँपकर सोने की

कोशिश करने लगता है। चौंकने और डरने का यह क्रम रात भर चलता रहता है। सुबह होने पर उसे लगता है वह रात को एक मिनट के लिए भी नहीं सो सका। वह उठकर शीशे के सामने जा खड़ा होता तो उसे अपना चेहरा अजीब तरीक़े से भयानक दीखता। वह बीते हुए वर्षों की अपनी सेहत और प्रसन्नता के विषय में सोचता और जल्दी तैयार होने लगता। सारा दिन काम करते वक्त उसके शरीर के जोड़ दुखते रहते और आँखों के सामने लाल-नीले और बदरंग धब्बे तैरते रहते। वह नदी के निर्जन किनारों या रात होने के बाद ख़ाली हुए पार्कों की बेंचों के बारे में सोचने लगता। या स्टेशन के थर्डक्लास मुसाफिरख़ाने की ख़ाली सीटों के बारे में या अपने घर से पहले पड़नेवाले विशाल बंजर मैदान के बारे में जहाँ बारहों महीने एक गन्दा तालाब भरा रहता है और जो मौसम के हिसाब से फैलता-सिकुड़ता रहता है। तालाब के हरे पानी में चारों तरफ़ जलकुम्भी फैली होतीं। एक तरफ वहाँ बसनेवाले मज़दूरों की औरतें अपने गन्दे कपड़े धोती। दूसरी तरफ़ छिछले पानी में मादा सूअरनी अपने बच्चों के साथ खेलती रहती। या वह महामारी से ख़ाली हुए शहरों और सुनसान मकानों के बारे में सोचता। हर तरफ़ बेतहाशा लोगों से घिरे हुए अपने शहर में उसे अपना जीवन भयानक और अरक्षित लगता। रात को सोने से पहले वह अकसर प्लेग, हैज़ा या पड़ोस के किसी देश के साथ सहसा छिड़ जानेवाले युद्ध के फलस्वरूप अपने शहर की कम हो गयी आबादी की कल्पना करता और करवटें बदलने लगता। कभी उसे लगता कि घर के अलावा वह और कहीं भी आराम से रह सकता है और सोचता कि वह कहीं के लिए भी चल दे। कहीं भी। जहाँ उसे जाननेवाला कोई भी न हो। जहाँ एकान्त हो, उड़ती हुई धूल और जलता हुआ आकाश और झुलसे हुए पेड़ों और मकानोंवाले दृश्य हों। सन्नाटे से भरे हुए। पर ये सारी बातें उसे अपने लिए असम्भव लगतीं। उसे शिद्दत के साथ महसूस होता कि उसके पलायन के सारे रास्ते बन्द हो चुके हैं और इस वर्तमान से जो उसकी नियति बन चुका है, उसके लिए कहीं भी निजात नहीं। दो-एक बार उसने करैन्ट छूकर या रेल के ऊँचे पुल से छलाँग लगाकर आत्महत्या करने की बात भी सोची। यह विकल्प उसे मोहक लगता। पर हर बार उसने अपने भीतर उस साहस की कमी पायी। तब वह समाचार-पत्रों में पढ़ी आत्महत्या की खबरों के बारे में सोचने लगता। उसे ईर्ष्या होती कि आखिर वह कौन-सी चीज़ आदमी के भीतर होती है जो और ज़्यादा भुगतने से इंकार कर देती है।

उसने खाट पर बैठे-बैठे अपने जिस्म पर हाथ फेरकर अपनी हड्डियों को महसूस किया था। फिर उठकर अँधेरे में चहलक़दमी करने लगा था।

छत पर तेज़ हवा चल रही थी, जिससे सामने पड़ने वाले नीम का साया दीवार पर तेज़ी से हिलता था। दरवाज़े पर खड़े होने पर सुनसान सड़क दिखती थी और क़तार में लगी हुई लैम्प-पोस्टों की बत्तियाँ। सहसा नीचे से पत्नी की खाँसने की आवाज़ आयी थी। पत्नी जाग रही थी। या शायद सो रही थी और सोते में खाँस रही थी। वह छत पर निकल आया। आसमान खूब साफ़ और नीला था। जगह-जगह तारे चमक रहे थे। कहीं छिटपुट। कहीं गुच्छों में। वह बचपन में पढ़े भूगोल के ज्ञान के आधार पर पहचानने की कोशिश करता रहा था। ये ध्रुवतारा, ये सप्तर्षि मडल, ये मंगल और ये अरुंधती। तेज़ी से चलनेवाली ठंडी हवा में उसके शरीर का पसीना सूख गया। वह आल्हाद से भरा हुआ था। उसने अचरज से सोचा था कि हर वक़्त आदमी की ज़िन्दगी में कितने सुखद आश्चर्य छिपे रहते हैं! दरअसल सुख आदमी के इर्द-गिर्द रहते हैं और उन्हें थोड़ा-सा तलाशने की ज़रूरत होती है। उसे लगा था कि उसके अँधेरे भविष्य में कोई दरवाज़ा खुल गया है और वह उससे दूर के तमाम चमकीले दृश्यों को बखूबी देख सकता है। उसने मस्ती में आकर सीटी बजायी थी, फिर लम्बी-लम्बी साँसों द्वारा अपने फेफड़ों में हवा भरकर मुट्ठी से अपनी छाती को ठोका था और महसूस किया था कि वह इतना दुबला या कमज़ोर नहीं है, जितना महसूस करता रहता है। सहसा उसे पता चला था कि उसकी थकान देर तक सोते रहने की आदत की वजह से है। उसे अपने प्रति उतनी उदासीनता नहीं बरतनी चाहिए। पूरब में फैलती हुई सफ़ेदी को देखकर उसने तय किया था कि वह स्वास्थ्य के लिए सुबह से घूमने जाया करेगा। कमरे में आकर उसने तौलिये से रगड़-रगड़कर अपना बदन पोंछा था। फिर साफ़ कपड़े पहनकर सीढ़ियाँ उतरता हुआ नीचे आ गया था। आँगन में आते ही उसने पत्नी की आवाज़ सुनी थी। वह ऊपर को पहुँचा तो पत्नी बेहद घबरायी हुई थी।

"उसका शरीर एकदम ठंडा पड़ गया है। न बोलता-चालता है, न साँस लेता है।" पत्नी एक साँस में कह गयी थी।

उसने बढ़कर बच्चे के शरीर से चादर हटायी थी और उसके पेट पर हाथ रख दिया था। बच्चे में कोई हरकत नहीं हुई थी। उसके मुँह के पास की चमड़ी सिकुड़ गयी थी। आँखें अधखुली रह गयी थीं। कुल मिलाकर वह काफ़ी डरावना लग रहा था।

"तो...?" कुछ वहाँ की सीली हुई बदबू और कुछ अपने आन्तरिक भय के कारण उसका स्वर काँप गया था। वह भावुक होकर बच्चे की बाल-सुलभ हरकतें और उसके प्रति पूरे न कर पानेवाले अपने कर्त्तव्यों के बारे में सोचने लगा था। उसे महसूस हुआ था कि उसका निचला होंठ तेज़ी से हिल

रहा है और आँखें रो पड़ने जैसी स्थिति में है। साथ ही एक अजीब तरह के हल्केपन ने उसे घेर लिया था। वह चाहने लगा था कि कब और कैसे वहाँ से हटे। "शरीर एकदम ठंडा हो रहा है।" उसने पत्नी की बात की ताईद की थी।

"डाक्टर को ले आओ।" पत्नी ने आँचल के छोर से दस का नोट निकालकर उसे थमा दिया था और आँखों पर हाथ रखकर रोने लगी थी।

"तुमने उसे कब देखा ?" उसने पूछा था।

"बस, अभी आँख खुली तो देखा बदन एकदम बर्फ़ हो रहा है।" पत्नी ने लम्बी साँस ली थी।

यह सड़क पर आ गया था। वह अप्रैल के महीने की सुहानी सुबह थी। सड़क के दोनों ओर लगे पेड़ों में नई पत्तियाँ आ गयी थीं। शाख़ों के ऊपर बैठे पक्षी चहचहा रहे थे। सामने की तरफ़ से आसमान साफ़ होता जा रहा था और आहिस्ता-आहिस्ता फैलते हुए झीने उजाले में दूर-दूर के मकानों और वृक्षों की आकृतियाँ स्पष्ट होती जा रही थीं। उसने होठों से सिगरेट लगाकर सुलगायी थी और धुएँ के लुत्फ़ के साथ सोचा था कि आज वर्षों के बाद वह फिर से सूर्योदय देखेगा। इस ख़याल ने उसे उत्साह से भर दिया। उसे अचरज हुआ था कि आज भी सुबह का दृश्य वैसा ही मोहक होता है जैसा बचपन में हुआ करता था। जब दुनिया की तमाम चीज़ें तिलिस्म की तरह मोहक और अजूबा लगती थीं।

उसने बच्चे के बारे में सोचना शुरू कर दिया था। हो सकता है, वह रात ही को चल बसा हो। सम्भव है दम तोड़ते वक्त वह कराहा भी हो। पर पत्नी हमेशा बेहोश होकर सोती है। सो वह वहाँ खुर्राटे मारकर सोती रही होगी। वहाँ बच्चा दम तोड़ता रहा होगा। कुल मिलाकर यह ठीक ही रहा। उसने निष्कर्ष निकाला था। अगर उस वक्त पत्नी की आँख खुल जाती तो वह ज़रूर उसी समय उसे डॉक्टर के यहाँ दौड़ाती। परेशानी के अलावा फ़िज़ूलखर्ची भी होती, अब कि होता यही जो हुआ है। फिर पत्नी रोना-धोना शुरू कर देती और उसके साथ उसे भी पूरी रात उस सीलन भरे कमरे में काटनी पड़ती।

"अब" ? चौराहे पर पहुँचकर वह ठिठकर खड़ा हो गया। डॉक्टर के पास जाना व्यर्थ है। पत्नी भी शायद समझ चुकी है कि बच्चा ख़तम हो चुका है। डॉक्टर को लाने का अर्थ ही व्यर्थ की परेशानी और पैसों की बरबादी। कुछ देर तक वह अनिर्णित अवस्था में खड़ा रहा था। फिर जमुना-पुल की तरफ जानेवाले रास्ते की तरफ़ मुड़ गया था। कुछ क़दम धीरे-धीरे चलने के बाद उसके पैरों में तेज़ी आ गयी। उसने पैंट की जेब में

हाथ डालकर नोट को मुट्ठी में भर लिया। उसे बेहद राहत महसूस हुई। उसके दिमाग़ में तरह-तरह की मिठाइयों, भोजनों और होटलों के नाम कौंधने लगे। दस रुपयों की एक-मुश्त रक़म ! उसे झुरझुरी हो आयी थी। इनसे वह वर्षों से टलती रहने वाली किसी भी ज़रूरत को पूरा कर सकता था। अपने लिए एक जोड़ी चप्पल ख़रीद सकता था। एक बुशशर्ट ख़रीद सकता था या किसी शानदार होटल में खाना खाकर इस एहसास से कि वह वर्षों से भूखा है, निजात पा सकता है। कैन्टीनवाले का हिसाब चुकता करके इस डर से मुक्ति पा सकता था कि वह किसी दिन उसका अपमान कर देगा। अपनी खाट के लिए उम्दा दरी खरीद सकता था, पत्नी के लिए हैन्डलूम की धोती ला सकता था। और जाने क्या-क्या...। उसने अपने को बेहद खुश और हल्का महसूस किया था और मुग्ध-भाव से उँगलियों से नोट को सहलाने लगा था।

पुल पर खड़ा होकर वह नीचे बहनेवाली अथाह जलराशि को देखने लगा था। पूरब के आसमान में सूरज का गोला धीरे-धीरे ऊपर को उठता जा रहा था। वह मुग्ध-भाव से देखता रहा था। पिछली बार जब वह यहाँ आया तब वह बेहद निराश था। उस वक्त रात थी और उसने सोचा था कि यदि वह पानी में कूदकर आत्महत्या कर ले तो क्या होगा। उसे लगा था अपनी तरफ़ से उसे जीते रहने से कोई मोह नहीं पर बच्चे और पत्नी की बर्बादी के खयाल ने उसे जकड़ लिया था। उसे उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों और और किताबों में पढ़े कुछेक आदर्श वाक्यों की याद हो आयी थी और उस तरह चोरी पर जीना उसे जघन्य अपराध लगा था। बाद में सोचने पर उसने पाया था कि दरअसल आत्महत्या कर लेने का साहस उसमें है नहीं। या फिर ये कि दुनिया में अब भी कहीं न कहीं, उसके लिए कोई आकर्षण है और उसके पास खुद को बहलाने के लिए कुछेक झूठी उम्मीदें हैं। संक्षेप में उस वक्त भी वह जीने से पूरी तरह निराश नहीं हुआ था। आत्महत्या करने के लिए आदमी को पूरी तरह से निराशावादी होना चाहिए, उसने तब पाया था।

वह घर के बारे में सोचने लगा था। पत्नी को निश्चय हो चुका होगा कि बच्चा बहुत पहले मर चुका है। हो सकता है बच्चे की शक्ल और भी ज़्यादा बिगड़ गयी हो। पत्नी ने घबड़ाकर रोना-धोना शुरू कर दिया हो और उसका घर पड़ोस के स्त्री-पुरुषों से खचाखच भर गया हो। इनमें से कुछ ऐसे भी होंगे जिनसे उसने काफ़ी पहले बच्चे की बीमारी के नाम पर उधार लिया था। वे इस समय कोफ़्त से भरे होंगे और उसका इंतज़ार कर रहे होंगे। पुरुष बाहर बैठे होंगे और स्त्रियाँ भीतर उसकी पत्नी को घेरे

हुए दिलासा दे रही होंगी। पुरुष अपनी ऊब मिटाने के लिए मौत से लेकर ईमानदारी, राजनीति और बढ़ती हुई क़ीमतों के बारे में बात कर रहे होंगे। बहुत-से लोग इस बात से भी चिन्तित होंगे कि ज़्यादा देर हो जाने पर वे अपने दफ़्तरों या दुकानों के लिए लेट हो जायेंगे।

लौटते वक्त उसे तरह-तरह की चिन्ताओं ने घेर लिया था। उसे लगा था घर पहुँचने पर दुःखी बाप की भूमिका निभाने में वह बुरी तरह असफल रहेगा और लोग उसे अपनी टिप्पणियों का शिकार बना लेंगे। इस पर उसने बच्चे की बीमारी की शुरुआत से अब तक आनेवाले ख़र्च और परेशानियों की फ़ेहरिस्त बनानी शुरू कर दी थी। और सोचा था कि ख़र्च और परेशानियों के अलावा बच्चे की कुछ बाल-सुलभ आदतों के बारे में भी उन लोगों को बतलायेगा। सामने एक हलवाई की दूकान देखकर वह रुक गया था। और टहलता हुआ भीतर पहुँचकर पत्थर की बेंच पर बैठ गया था। उसने छोकरे को बुलाकर सौ ग्राम जलेबी और आधा सेर दूध का आर्डर दिया था। दूध-जलेबी खा चुकने के बाद उसने अपके को तृप्त महसूस किया था और घर पहुँचने के ख़याल से जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाने लगा था।

घर के भीतर घुसते ही तमाम लोग उसे घेरकर खड़े हो गये। उनके चेहरों पर उत्सुकता थी। वे तरह-तरह के सवाल पूछने लगे थे। उस पर नज़र पड़ते ही पत्नी ने फिर से रोना शुरू कर दिया था। यह सब इतनी आकस्मिकता के साथ हुआ था कि उसके दिमाग़ से क़तई उड़ गया कि यह सब औपचारिकता है और उस नाटक का अंतिम दृश्य है। उसके गले में थूक सूख गया था और और शरीर में कँपकँपी भर गयी थी। वे सब लगातार उसी की तरफ़ देख रहे थे। उसे लगा था जब तक वह कुछ कहेगा नहीं, सब कुछ उसी उबाऊ तरीक़े से चलता रहेगा। सहसा वह एक पैर की टेक लेकर खड़ा हो गया था और भरे हुए टेप की तरह चालू हो गया था। "नहीं दोस्तो, मैं यह मानने को तैयार नहीं कि अधिक उत्पादन, योजनाओं, राष्ट्रीयकरण या मौलिक अधिकारों ने देश का नैतिक स्तर गिराया है। दरअसल मेरे बच्चे की मौत का कारण एकदम असाधारण और लाइलाज है...और तो ये कि इस देश के लोगों की याददाश्त बेहद कमज़ोर है और वे बाईस साल उन्हीं-उन्हीं ग़लत लोगों को वोट देते आ रहे हैं...।"

बात ख़तम करने के बाद वह भौंचक हो गया था। सब लोग हैरत से उसकी शक़्ल देखने लगे थे।

•

बीच का दरवाज़ा

इस बार साफ ही लगा था कि चीख़ ही है, पत्नी की है और आँगन की तरफ़ से आयी है। कुछ ही देर पहले वह मास्टर की जिरह से ऊब कर ज़ीने की सीढ़ियाँ उतर कर नीचे चली गयी थी। मास्टर वहीं फ़र्श पर, सिर के नीचे कुहनी की टेक लेकर अधलेटा हो गया था और बारजे की जाली से छन-छन कर आने वाली लैम्प-पोस्टों और सड़क के उस तरफ़ बने छिटपुट मकानों की रोशनियों को देखने लगा था। कमरे में पैर रखते ही उसने बिना किसी भूमिका के पत्नी से उसकी जब-तब छज्जे पर जा खड़े होने की आदत को लेकर सवाल पर सवाल करना शुरू कर दिये थे। उसे उम्मीद थी कि पत्नी चुपचाप उसकी डाँट सुन लेगी और आइन्दा ऐसा न करने की क़सम खायेगी। मगर उसकी बात पर पत्नी पहले तो हैरान दिखी थी। फिर उसके चेहरे पर वही हिक़ारत का भाव आ गया था। उसने सवाल के बदले में सवाल करना शुरू कर दिये थे।

अपनी जायज़ बात का उलटा असर होता देखकर मास्टर अपनी क़िस्मत और उसके बाप को कोसने लगा था। जब इससे भी पत्नी के रुख में कोई फ़र्क नहीं आया तब बौखलाकर अपने लिए गालियाँ बकने लगा था। जब वह उकता कर उठने लगी तब चुप होकर भीतर ही भीतर कुढ़ता हुआ उसके नितम्बों पर झूलती हुई चोटी को देखने लगा था। आज वह तय करके आया था। दोपहर को स्टाफ़-रूम में दो अध्यापकों की खुसर-पुसर उसने सुन ली थी और सोच लिया था कि आज फ़ैसला होकर रहेगा।

मास्टर हड़बड़ा कर उठा था और खिड़की से आँगन के अँधेरे में आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा था। सात-आठ दिन पहले बरामदे का बल्ब फ़्यूज़ हो गया था। उस दिन से पत्नी रोज़ टोकती थी कि बाज़ार से बल्ब लाकर वहाँ लगा दे। और वह इसे फ़िज़ूल मानकर टाल देता था। हवा काफ़ी तेज़ चल रही थी। खिड़कियों और दरवाज़े के किवाड़ फड़फड़ा रहे थे।

इसके बावजूद वह चीख़ मास्टर को कपड़े की कई तहों में लिपटी सुई की तीखी नोंक की तरह चुभ गयी थी। कुछ देर तक वह तय करने की कोशिश में लगा रहा था कि पत्नी को किसी कीड़े-मकोड़े ने काट लिया है या ग़ुसलख़ाने की फिसलन पर रपट कर गिर पड़ी है। मगर जब दुबारा उसके विरोध करने और उत्तर में एक अधिकार भरी परिचित आवाज़ आयी तब बिजली के कौंधने की तरह सारी बात समझ में आ गयी। यह समझना किन्हीं दी हुई बातों के आधार पर एक क्षिप्र प्रक्रिया द्वारा एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की तरह था। घटना और उसकी आकस्मिकता ने मास्टर को इस क़दर आक्रान्त कर लिया था कि वह भूल ही गया था कि ऐसे में चिल्लाना होता है। जब याद आया था तब उसे महसूस हुआ था कि वह किसी भयावह दुःस्वप्न की गिरफ़्त में जकड़ा हुआ है और शब्द उसके गले में फँसकर रह गये हैं। फिर जाने कैसे उसे सूझ गया था। उसने दो-तीन बार ज़ोरों से खँखारा था, जेब से सिगरेट निकाल कर तीली घिसी थी और जलती हुई तीली को आँगन की हवा में उछाल दिया था। सहसा सन्नाटा छा गया था। वे शायद बरामदे में थे या गलियारे में। क्योंकि इतनी देर बाद अब मास्टर की आँखें आँगन के अँधेरे की अभ्यस्त हो चुकी थीं और वहाँ की किसी भी हिलती-डुलती चीज़ को बख़ूबी देख सकती थीं। सहसा उसे अपनी टाँगों पर एक साथ सैकड़ों मच्छरों के दंश का एहसास हुआ था तो वह हाथ का तौलिया उन पर झाड़ने लगा था। फिर दूसरे पैर की टेक लेकर हर बीतने वाले सैकिण्ड के साथ अपने को तेज़ी से ख़ाली होता महसूस करता हुआ निरपेक्ष-सी मुद्रा में चुपचाप खड़ा हो गया था।

आँगन में, कमर में सफ़ेद लुंगी लपेटे एक छाया दिखी थी। वह दोनों मकानों को विभक्त करने वाली दीवार से सटकर चलती हुई चुपचाप बीच के दरवाज़े से दीवार के उस पार सरक गयी थी। मास्टर का तनाव ढीला हुआ तो उसे लगा था कि अब तक गले के भीतर अटकी रहने वाली चीख़ निकल ही पड़ेगी। अपने को संयत रखने के लिए वह कश पर कश खींचने लगा था। पत्नी शायद बरामदे में थी या आ गयी थी। रो रही थी।

पत्नी पचीस पावर की बीमार-सी रोशनी से पुते उस चौकोर कमरे के दरवाज़े के बीचोंबीच बुत की तरह आ खड़ी हुई थी। वह अजीब-सी मुद्रा में मास्टर को अपनी आँखों में चुभती हुई-सी लगी थी। एक अजीब-सी थरथराहट उसके तलुवों से होती हुई उसके पोर-पोर में फैलने लगी थी। "तुमसे कितनी बार कहा कि नीचे बल्व लगा दो।" जैसे घटना के गुज़र चुकने के बाद अब पत्नी को उसकी भयावहता का पूरा-पूरा अहसास हो रहा था। उसका समूचा ज़िस्म पत्ते की तरह काँप रहा था।

उसकी तरफ़ आँखें तरेरता हुआ मास्टर तय करने की कोशिश करने लगा था कि सही-सही क्या घटा। "या फिर ग़ुसलख़ाना ऊपर बनवा दो।" पत्नी उलटी अँगुलियों से आँखें पोंछने लगी थी।

मास्टर को बुरी तरह लगा था कि पूरी ताक़त के साथ चीख पड़े। "या फिर बीच का दरवाज़ा बन्द करवा दो।" पत्नी ने कहा। मास्टर ने दाँत भींचकर प्रकट किया था कि कितनी मुश्किल से ज़ब्त किये हुए है।

"या फिर मकान बदल लो!" पत्नी का स्वर काफ़ी सधा हुआ हो गया था। "अगर तुम न होते आज...तो...तो...," उसकी सिसकियाँ फिर बेक़ाबू होकर फूट निकली थीं।

मास्टर के नथुनों से राहत की लम्बी साँस निकली थी जो हुक की तरह उसकी छाती में अटकी हुई थी। "तुम्हारी जगह कोई और होता तो उसे यहीं मज़ा चखा देता।" पत्नी की आवाज़ में चुनौती थी।

"अब समझ में आ गया होगा कि क्यों छज्जे पर खड़े होने से मना कर रहा था!" हवा में मुट्ठियाँ भींचकर मास्टर ने बताया था कि वह किस तरह हर जगह सही होती है।

"और तुम खड़े-खड़े देखते रहे। असल में वह जानता है न कि यह आदमी किस तरह बुज़दिल है। तभी तो उसकी इतनी हिम्मन पड़ गयी!" पत्नी वितृष्णा से बोली थी। इसका तीखापन मास्टर को भीतर तक छीलता गया था।

"मैं जानता था...मैं जानता था यह होगा!" मास्टर ने सारा दोष उसी के मत्थे मढ़ते हुए कहा था और मुँह में घुली कड़वाहट को वहीं फ़र्श पर थूक दिया था।

"तुम मर्द हो?" जैसे सचमुच ही उसके चेहरे पर थूक देने के लिए पत्नी उसके बिलकुल क़रीब आ खड़ी हुई थी। उसने घृणा से होंठ बिचकाकर, आँखें छोटी कर कहा था—"तुम सचमुच मर्द हो!" घृणा से उसका चेहरा एकदम विकृत हो रहा था। एकाएक वह मुड़ी थी और तेज़ी से अपनी चारपाई पर गिरकर सिसकने लगी थी।

कुछ देर वहीं खड़े रहने के बाद मास्टर बारजे पर निकल आया था। डरा हुआ था कि पत्नी की चीख किसी और ने तो नहीं सुनी। क्योंकि हवा के बावजूद उस समय सन्नाटा था और चीख काफ़ी तेज़ और खिची हुई थी। सड़क सुनसान थी। एक क़तार में लगे हुए लैम्प-पोस्टों से रोशनी के फीके दायरे गिर रहे थे। बाईं ओर के चौराहे का नल जो महीनों से बिगड़ा पड़ा था, झींगुर की-सी पतली और खिची हुई आवाज़ के साथ सड़क पर पानी की तेज़ धार फेंक रहा था जिससे उतनी जगह का डामर भींगकर

आइने की तरह चमक रहा था। नीम-अँधेरी सड़क को अपनी हैड-लाइट्स से चीरता हुआ एक ट्रक गुज़रा था। रात के सन्नाटे में उसकी आवाज़ देर तक गूँजती रही थी।

पैरों में फिर तेज़ खुजलाहट महसूस होने लगी थी। दाईं पिंडली को बाएँ पैर के नख से खुजलाता हुआ मास्टर सोचने लगा था कि ऐसे मौक़ों पर हत्या तक हो जाती है। अजीब लग रहा था कि वह ज़्यादा उत्तेजित नहीं है। असल में वह घटना उसे उतनी अप्रत्याशित नहीं लग रही थी। नियुक्ति के पहले भी उसने अध्यक्ष के बारे में काफ़ी सुन रखा था। बाद में यह भी सुना था कि अध्यक्ष उसे अपने मकान में किसी ख़ास मतलब से रखे हुए हैं। तभी से वह आशंकित था कि कुछ घटेगा। हालाँकि वह नहीं जानता था कि यह इतनी जल्दी और इस तरह घटेगा। और घट जाने के बाद उसे महसूस हो रहा था कि वह भीतर से इसके लिए तैयार था और डरता हुआ प्रतीक्षा कर रहा था। उसके चाहने न चाहने का सवाल बेमानी था क्योंकि उसके साथ जो घटता है, उसे रोकने में वह हमेशा असमर्थ रहता है। पिछली बेकारी ने उसे इस क़दर अपाहिज और कायर बना दिया है कि उसे विश्वास हो चुका है कि वह किसी भी बात का कारगर ढंग से विरोध नहीं कर सकता। वह अपने को हर ओर से जानवरों और आदमख़ोरों के बीच निहत्था घिरा हुआ पाता है और महसूस करता है कि वह सिर्फ़ उनकी दया पर जी सकता है। इसलिए सहसा वह घोर नैतिकतावादी हो गया था और तमाम शाकाहारी क़िस्म के सिद्धान्तों से अपने को ढाँपे रहता था। फिर भी उसे दूसरों की मुस्कराहटों के पीछे षड्यन्त्रों की झलक आती थी और क़दम-क़दम पर अपने गिर्द छिपकर चलने वाले ख़तरों का अहसास होता रहता था। कभी-कभी उसे हैरत होती थी कि अपने चरम आतंक के क्षणों में वह जिस चीज़ से डर रहा होता है, वह कोई बीती हुई या सम्भावित घटना न होकर स्वयं डर होता है।

पत्नी सो गयी थी। उस निरीह मुद्रा में वह नितान्त असहाय और लावारिस दिख रही थी। मास्टर को याद नहीं आता कि कभी सही अर्थों में वे एक-दूसरे को पूरी तरह समर्पित हो सके हों आज तक। शुरू-शुरू में जब वह नारी देह के अलावा कुछ और भी थी जिसे लेकर मास्टर भावुक बना रहता था।

ग़रीबी, कच्चा मकान, माँ की बीमारी, बेकारी या और कोई अभाव हमेशा उनके बीच किरकिराता रहा है। फिर पता नहीं, कब रोज़मर्रा ज़िन्दगी की दूसरी चीज़ें ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती गयीं और अब मास्टर को लगता है कि वे किसी ग़लत संयोग द्वारा एक ही परिस्थितियों में जीने के

लिए छोड़ दिए गये दो नितान्त विपरीतगामी व्यक्तित्व हैं, अपनी-अपनी मजबूरियों और ऊब द्वारा एक-दूसरे से जुड़े हुए। सेक्स और घृणा में एक-दूसरे की उपयोगिता तलाशते हुए। एक ही तंग दायरे में घूमते हुए।

अध्यक्ष इस वक़्त क्या कर रहा होगा ! हो सकता है, अपनी असफलता को उसने अपना अपमान समझा हो और वह मास्टर से बदला लेने की योजना बना रहा हो ! मास्टर उसका कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वह उसके कॉलेज की मैनेजिंग कमेटी का अध्यक्ष है और उसकी नौकरी का मालिक है जिसकी वजह से इसकी ज़िन्दगी है—ज़िन्दगी जिसमें रहने के लिए एक मकान, दोनों वक़्त का भर-पेट भोजन, पत्नी और सेक्स है। बेशक उसके साथ घोर अन्याय हुआ है मगर वह अध्यक्ष से बदला नहीं ले सकता क्योंकि देश के शासन, क़ानून, व्यवस्था में अध्यक्ष के ख़िलाफ़ कहीं उसका समर्थन नहीं क्योंकि वह ईमानदार आदमी है और नैतिकता में विश्वास करता है। अध्यक्ष नेता है। मास्टर उससे अपनी पत्नी के अपमान का बदला नहीं ले सकता क्योंकि वह चाहे तो उस पर अभियोग लगाकर उसे कॉलेज से निकाल सकता है, पुलिस में फँसवा सकता है, गुंडों से पिटवा सकता है, उसकी पत्नी के बारे में अफवाहें फैला सकता है।

मास्टर की आँखों में आँसू आ गये थे। किसे दोष दे वह ? अपनी दयनीयता को ! अध्यक्ष को ! अपनी नौकरी की मजबूरी को या इस व्यवस्था को !

मास्टर ने दूर-दूर तक टिमटिमाती सड़क की बत्तियों में देखा था जो अँधेरे की किसी ख़ामोश साज़िश के ख़िलाफ़ विरोध करती हुई-सी लगती थी, फिर अपने गिर्द मँडराते मच्छरों पर तौलिया झाड़कर वहीं लेट रहा था। उसे लग रहा था कि जलते हुए लावे का एक बड़ा-सा बगुला उसकी छाती में अटक गया है और उसकी यन्त्रणा से उसका दम घुट रहा है।

प्रयत्न करने पर उसके मुँह से 'हो...हो...हो...' जैसी अस्फुट आवाज़ें निकली थीं। मास्टर रो रहा था। उसका चेहरा आँसुओं से तर था। पता नहीं कितनी देर तक वह अपने को दुनिया का सबसे अपमानित, घृणित, दलित और असहाय प्राणी समझता हुआ सुबक-सुबककर रोता रहा। फिर अपने शरीर पर डंक मारते सैकड़ों मच्छरों से बेख़बर होकर मार खाये कुत्ते की तरह सिकुड़कर लेट रहा। रात भर कच्ची नींद की लय पर अँधेरे में काली परछाइयाँ नाचती हुई दिखती थीं जो उसे पूरा होश आने के साथ ही हवा में घुल जाती थीं।

सुबह होते ही उसने अध्यक्ष के पास सूचना भिजवायी थी कि वह दरवाज़ा बन्द करवाना चाहता है। बुलाए जाने पर ख़ुद हाज़िर हो गया

था। "क्या बात है ?" अध्यक्ष ने रोब भरी आवाज़ में पूछा था। मास्टर गुस्ताखी हो जाने वाले भाव से कहने के लिए शब्द तलाशता हुआ चुपचाप खड़ा रहा था। "दरवाज़ा क्यों बन्द करा देना चाहते हो ?" इस बार अध्यक्ष ने कुछ नरमी से पूछा था।

"बात ये है सर," मास्टर हकलाता हुआ-सा कहने लगा था—"आपके अहाते में वो है न पीपल का पेड़ ! उससे मेरी बीवी को डर लगता है। कमज़ोर-दिल औरत है साहब ! भूत-प्रेत में विश्वास..."

"अच्छा, अच्छा, जाओ !" अध्यक्ष ने उसकी बात को बीच में काट कर कहा था, "ठीक है।"

फिर कारीगर आया था और चूने तथा ईंटों से दरवाज़ा चिन दिया गया था।

शाम होते ही अध्यक्ष की मोटी बीवी अपने घर की सबसे ऊँची मुँडेर पर चढ़कर चीख़ने लगी थी, "देखो तो क्या नहीं किया साहब ने इसके साथ ! उसे स्कूल में नौकरी दी। इज़्ज़त दी। रहने के लिए घर दिया। और उसका क्या बदला लिया इन लोगों ने ! कैसे आदमी हैं ! चोर, बद-माश, उचक्के या लफंगे। सारा शहर जानता है कि ये कैसे आदमी हैं !"

"इस तरह से कह रही है जैसे इसके बाप का स्कूल हो और मुफ़्त की तनख्वाह मिलती हो ! बड़ी शरीफ़ है ये और इसका खसम !" पत्नी भुनभुनायी थी।

"सारा कांड तुम्हारी वज़ह से हुआ !"

"मैं कहती हूँ, तुम क्यों डरते हो इस तरह !"

"असल में भुगतना नहीं पड़ता न कुछ ! इसलिए घर में शेर बनी रहती हो ! बाहर निकलो तो पता चले !"

"मेरे बस का नहीं है उसकी बातें सुनना ! तुम तो स्कूल चले जाते हो ! पता है, ये क्या-क्या बातें कहती है ! तुम यह मकान बदल दो !"

मास्टर काँपता हुआ एक कोने में बैठ गया था—चुपचाप। उसे लग रहा था कि काग़ज़ की चिन्दियों की तरह यह अफ़वाह पूरे शहर की हवा में फैल गयी है। सड़कों, चौराहों, दुकानों, दफ़्तरों और स्कूल के लोग, अध्यक्ष और उसकी पत्नी के बारे में बातें कर रहे हैं और खुश हो रहे हैं।

उसने तय किया कि कुछ दिनों तक, जब तक अफ़वाहें ठंडी नहीं पड़ जातीं, घर से बाहर नहीं निकलेगा।

चौराहे तक पहुँचते-पहुँचते मास्टर हाँफने लगा था। उसे लग रहा था कि वह भीतर ही भीतर भयानक रूप से 'रेज़िस्ट' कर रहा है और इस प्रक्रिया में बिलकुल निचुड़ गया है। उसने आँखों पर धूप का चश्मा

चढ़ा रखा था। दुकानों पर इकट्ठे हुए, राह में चलते हुए लोगों की नज़रें अपने जिस्म पर झेलता हुआ सरपट भागता रहा था। पनवाड़ी की दुकान पर उसकी पान खाने की इच्छा हुई थी तो वह साइकिल की टेक लेकर खड़ा हो गया था। पान का आर्डर लेने और पान देते वक़्त पान वाला जिस तरह निर्पेक्ष दिख रहा था, उससे वह काफ़ी आश्वस्त हुआ था। वह दुकान शहर की ख़बरों का अड्डा थी। अगर कुछ होता तो पान वाला ज़रूर उसे कुछ न कुछ बताता।

स्टाफ़-रूम में घुसते ही सक्सेना पर नज़र पड़ी थी। वह आराम से मेज़ पर दोनों पैर फैलाये बीड़ी फूंक रहा था। "हलो!" उसे देखते ही सक्सेना ने सदा की तरह कहा, "तीन दिन ग़ायब रहे कामरेड! क्या बात हो गयी थी?"

सक्सेना का हालाँकि किसी राजनीतिक पार्टी से सम्बन्ध नहीं था तो भी उसने ग़ल्लामण्डी के पल्लेदारों और ताँगेवालों से लेकर म्यूनिसिपैलिटी वालों तक की यूनियनें बना रखी थीं, और हरेक यूनियन का कुछ न कुछ था। प्रसिद्ध था कि शहर में होने वाली हर हड़ताल में उसका हाथ रहता है।

"कुछ नहीं। कुछ नहीं।" मास्टर उसके चेहरे से आँखें हटाकर फ़र्श पर फैले कूड़े की तरफ़ देखने लगा था।

"वाइफ़ की तबीयत ख़राब हो गयी थी।" कहने के साथ ही उसे पछतावा हुआ कि क्यों पत्नी को बेकार घसीट लाया।

"मगर दरख़्वास्त में तो तुम ने अपनी बीमारी का ज़िक्र किया था?"

"वो ..हाँ...असल में उसके 'सिक' पर छुट्टी मंज़ूर नहीं होती।"

"बड़े बाबू से मिल लिये?"

"नहीं, तीन दिन बाद घर से बाहर निकल रहा हूँ।"

"तो तुम्हें सचमुच कुछ नहीं मालूम! मैं समझता था कि अब तक पता चल गया होगा!" सक्सेना ने उसकी तरफ़ सहानुभूति से देखा था।

"मुझे कुछ पता नहीं। क्या बात है?" मास्टर चिन्तित हो गया था। सक्सेना कुछ देर तक उसके चेहरे को तौलता रहा, फिर आवाज़ को दबा कर बोला, "इस साल नोटिस पाने वालों में मेरे साथ तुम्हारा भी नाम है।"

"अरे नहीं, गुरु!" मास्टर ने कुर्सी से उछलकर उसका हाथ थाम लिया, "मज़ाक कर रहे हो! यह नहीं हो सकता।"

"होना तो नहीं चाहिए था!" सक्सेना ने उसके पंजे से अपना हाथ छुड़ाकर कहा, "अध्यक्ष ने तुम्हें अपने मकान में रखा हुआ है, लेकिन...।"

"पैनल ने मेरी सब से अच्छी रिपोर्ट दी थी। मेरा आज तक एक्सप्लेनेशन कॉल नहीं हुआ। मैं अध्यक्ष की गुडबुक्स में हूँ। प्रिंसिपल की गुड-बुक्स में हूँ।" मास्टर का शरीर काँप रहा था।

प्रिंसिपल के कमरे से निकल कर बड़े बाबू अन्दर आये तो सक्सेना ने उसी से पूछा, "इनका नाम है न बड़े बाबू ?" बड़े बाबू ने आलमारी से फ़ाइल निकालते हुए सिर हिला दिया।

"मेरा नाम नहीं हो सकता !" मास्टर ने उतावली में बड़े बाबू के दोनों कंधे पकड़ लिये थे।

"आप का नाम है।" बड़े बाबू ने दरवाज़े पर खड़े होकर टोह ली फिर राज़ खोलने के अन्दाज़ में बोला था, "बात यह है कि अगस्त में नगरपालिका की चेयरमैनी का चुनाव है। अपना अध्यक्ष उम्मीदवार है। दो सदस्यों को इस शर्त पर राज़ी किया है कि अगले सेशन से उनके लड़कों को कॉलेज में चिपका लिया जायेगा।"

"अब !" मास्टर ने निरर्थक-सा प्रश्न किया। थोड़ी देर के लिए उस का प्रश्न कमरे की हवा में टँगा रहा। सक्सेना फिर बीड़ी पीने लगा था।

"दो अध्यापकों को निकालना ज़रूरी है क्योंकि इससे अध्यक्ष को दो वोट मिल जायेंगे...।" सक्सेना घृणा से बोला था।

"समझ में नहीं आता अब क्या होगा ?" मास्टर की आँखों के आगे अँधेरा फैल रहा था।

"हमें विरोध करना चाहिए। मेरे दिमाग़ में एक योजना है।" मास्टर आँखें झपकाता हुआ उसकी तरफ़ देखने लगा था।

"मुझे पता चला है कि अध्यक्ष प्रिंसिपल के साथ मिलकर खूब पैसा खा रहा है। दो बायलॉजी-लैब बन रही हैं न ?"

"तो ?"

"इस के पर्चे छपवा कर पूरे शहर में चिपकवा देना चाहता हूँ," सक्सेना खुश दिखा था, "कैसा रहेगा ?"

"तुम अपनी तरफ़ से जो चाहो कर सकते हो। मुझे इन बातों में क़तई विश्वास नहीं।"

सहसा सक्सेना का चेहरा कठोर हो गया—"मैं नहीं जानता था कि तुम इतने बुज़दिल हो।" उसे अफ़सोस हो रहा था कि नाहक ऐसे आदमी से राज़ की बात कह डाली।

"इस में बुज़दिल होने की क्या बात है ?" मास्टर अपने को ढाँपता हुआ बोला।

"मैं बता सकता हूँ कि तुम क्या करोगे," सक्सेना वितृष्णा से बोला,

"तुम अध्यक्ष के पास जाओगे और उसके तलवे चाटोगे !"

"मैं जा भी सकता हूँ," मास्टर ढिठाई से बोला।

"तुम ग़द्दार हो। तुम उसे खुश करने के लिए बता दोगे कि मैंने तुम से क्या कहा।" सक्सेना की आँखें घृणा से अधमुँदी हो गयी थीं।

"मैं इतना गिरा हुआ आदमी नहीं हूँ।"

"एक बात कहूँ, डियर तुम्हें जल्द से जल्द मकान बदल देना चाहिए।" सक्सेना ने व्यंग्य किया।

"क्या मतलब ?" मास्टर बौखला गया था।

"मतलब बहुत साफ़ है," सक्सेना हँस दिया था—"तुम्हें अपना मकान बदल लेना चाहिए।"

कुछ देर तक वे एक-दूसरे को घूरते हुए खड़े रहे थे। फिर घंटा बजा। मास्टर ने रजिस्टर और डस्टर उठाया और दरवाज़े के बाहर हो गया।

बड़े बाबू रेस्तराँ के दरवाज़े पर उसी का इन्तज़ार कर रहे थे। "आप का नाम है..." उसने मास्टर को देखते ही कहा। मास्टर आँखें फाड़कर उसकी तरफ़ देखने लगा।

"पालिसी बनाई गयी है कि जिनका रिज़ल्ट सिक्सटी परसेंट से नीचे रहा हो, उन्हें नोटिस दे दिया जाये। इस हिसाब से दो और लोगों को नोटिस दिये जायेंगे।" बड़े बाबू ने आगे बताया।

"मगर इंगलिश तो मैंने बंगाली बाबू के छुट्टी पर जाने पर केवल दो माह पढ़ायी थी। वह मेरा विषय नहीं था···।"

"जो मालूम हुआ, सो बता रहा हूँ। दो लोगों को जुलाई में फिर एपाइन्ट कर लिया जायेगा।" बड़े बाबू ते ठंडे लहजे में कहा।

घर पहुंच कर देखा कि उसकी पत्नी फ़र्श पर ही सो गयी थी। शायद वह उस का इन्तज़ार करते-करते सो गयी थी। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। मास्टर उत्तेजित हो उठा था। उसने पत्नी के शरीर पर हाथ फेरा। उसने ठेलकर करवट ले ली। मास्टर बाहर आ गया।

कुछ निश्चय कर पाने की कोशिश में बेचैनी से इधर से उधर तक मास्टर टहलता रहा। सहसा उसने पाया कि उसके दिमाग़ की धुन्ध किसी ठोस निर्णय की शकल ले रही है। फिर वह तेज़ी से सीढ़ियाँ उतरता हुआ नीचे आ गया। अँधेरा बरामदा और गलियारा पार कर वह अध्यक्ष के दरवाज़े पर खड़ा हो गया। उसने टटोलकर काल-बेल का बटन दबाया। कुछ देर बाद दरवाज़ा खुला और कमरे में सफ़ेद लुँगी बाँधे अध्यक्ष का मोटा शरीर प्रकट हुआ। "तुम ?" अध्यक्ष ने हिक़ारत से कहा।

"जी...जी...!" मास्टर नये रंगरूट की तरह सावधानी की मुद्रा में

खड़ा हो गया।

"क्या बात है ?" अध्यक्ष ने झिड़कने के अन्दाज़ में पूछा।

"जी साब, बात ये है कि..." जैसे शब्द मास्टर के गले में अटक कर रह गये थे।

"क्या कहना चाहता है !"

जैसे अध्यक्ष के डपटने से मास्टर की घिग्घी खुल गयी थी। वह टेप किए गये बयान की तरह शुरू हो गया था।

"साहब मेरी बीवी को अकेलापन बहुत सताता है। कहिये तो कल बीच का दरवाज़ा खुलवा दूँ। और साहब, वह इस क़दर बेहोश होकर सोती है। और साहब, मैं इस क़दर बेवकूफ़ आदमी हूँ...हें...हैं...।"

●

कनखजूरा

हालाँकि इस वक़्त भी वह साफ़-साफ़ नहीं कह सकता था कि बात क्या है ! पहले तो उसे लगा था कि यह सिर्फ़ उसकी मनःस्थिति है, जो बीमारी के बाद कुछ दिनों तक चलने वाली कमज़ोरी के रूप में अक्सर उसे अपनी गिरफ़्त में लिये रहती है। या शायद इसलिए कि आज दफ़्तर के लोग उसके साथ रोज़ से ज़्यादा बेरहमी से पेश आये थे और वह अपनी मेज़ पर बैठा-बैठा लगातार पसीना छोड़ता रहा था। लौटते वक़्त आख़िरी बस पकड़ने के लिए उसे अपने नियम के ख़िलाफ़ क्यू तोड़कर आगे आना पड़ा था और कुछ दूर तक फ़ुटबोर्ड पर टँगे रहने के बाद बड़ी मुश्किल से बस के भीतर दाख़िल हो पाया था। फ़ुटबोर्ड का डंडा थामे-थामे उसकी कलाइयों की नसें तड़कने लगी थीं। एक बार तो उसे लगा था कि उसका हाथ छूटने ही वाला है और वह किसी भी क्षण बस के पहिये के नीचे आ जायेगा। उसके भीतर घुसते ही लोगों के चेहरों पर हिक़ारत का भाव आ गया था, जैसे वह उनका कोई हक़ मारने के लिए उनका पीछा करता हुआ चल रहा हो। फिर स्टाप से घर तक का रास्ता तय करने, और फिर सीढ़ियाँ चढ़ने में सचमुच वह काफ़ी थक गया था। कमरे में पहुँचते ही वह चारपाई के ऊपर निढाल होकर लेट रहा था। कुछ देर बाद पत्नी दूध लेकर आयी, तो वह उसी तरह आँखें मूँदे पड़ा रहा था।

पत्नी ने उसका पैर पकड़कर हिलाया था, "दूध पी लो।"

"ऐं...? हाँ।" उसने जाहिर किया था कि वह सचमुच सोया हुआ था और दीवार की टेक लेकर गट्-गट् दूध पी गया था।

आलमारी में रखी हुई टाइम-पीस साढ़े आठ बजा रही थी। उसे ताज्जुब हुआ था, क्योंकि उसकी समझ से रात काफ़ी हो गई थी। उसने खिड़की की सलाखों से चेहरा टिकाकर सड़क की तरफ़ देखा था। सड़क पर

घुप्प अँधेरा था। खंभों के बल्ब महीनों पहले फ़्यूज़ हो गये थे। कुछ दिनों तक इंतज़ार करने के बाद उसने मुहल्ले के लोगों के दस्तख़त कराकर कई-एक दरख्वास्तें भेजी थीं। मगर आज तक पता नहीं चल सका था कि उनका क्या हुआ। वहाँ से काफ़ी फ़ासले पर रोशनी के नाम पर एक बल्ब जलता था, जिससे पता चलता था कि यह सड़क किस तरफ़ को जाती है।

सहसा उसे लगा था, जैसे नीचे दरवाज़े को कोई लगातार पीट रहा हो।

उसने पत्नी को आवाज़ दी थी, "ये आवाज़ किस चीज़ की आ रही है ?"

"कैसी आवाज़ ? मुझे तो कुछ नहीं सुनाई पड़ता," पत्नी ने कहा था।

वह अपने कान खड़े किये सुनने की कोशिश करता रहा था। "लगता था, जैसे कोई कुंडी पीट रहा हो।" उसने पत्नी के चेहरे की तरफ़ देखते हुए कहा था। पत्नी के चेहरे पर परेशानी का भाव था। ज़ाहिर था, वह मन ही मन खीज रही थी। वह जाने को हुई, तो वह फिर कुछ सुन लेने के अंदाज़ में बोला था, "वो देखो, देखो।"

"कोई पड़ोस में आया होगा। अपने यहाँ कौन आयेगा इस समय ?" पत्नी को इस बार भी कोई आहट नहीं सुनायी दी थी। पर वह इतनी-सी बात को लेकर उसके साथ बहस में नहीं पड़ना चाहती थी।

"हाँ-हाँ, अपने यहाँ कौन आयेगा ?" उसने अविश्वास से कहा था, "अख़बारों में आजकल अजीब-अजीब ख़बरें आ रही हैं..." वह पत्नी को कुछ हैरत-अंगेज़ ख़बरों के बारे में बताना चाहता था। मगर पत्नी रुकी नहीं थी।

अकेला पड़ते ही वह उन तमाम ख़बरों के बारे में सोचने लगा था, जो उसने आज कैंटीन में चाय पीते वक़्त पढ़ी थीं।

त्रिगिलपेठ के एक अस्थायी अकाउंटेंट ने अपने विभाग में कंप्यूटर लाये जाने का समाचार सुनकर फाँसी लगा ली थी। उत्तर प्रदेश की नयी सरकार ने पिछली सरकार द्वारा फूड कार्पोरेशन में की गयी सभी नियुक्तियों को राजनीतिक घोषित करने के बाद छँटनी प्रारम्भ कर दी थी। वाराणसी में एक होटल वाले को एक हिप्पीनुमा गुंडे ने छुरा मार दिया था, क्योंकि उसने चाय के पैसे माँग लिये थे। राजधानी में एक पार्क से गुज़रते लोगों को हाथ, पैर, मुँह बँधा हुआ एक आदमी पड़ा मिला था, जिसने बताया था कि वह अपनी लड़की के साथ इधर से गुज़र रहा था कि लोगों ने उस पर हमला बोल दिया। लड़की अभी तक लापता है। एक थाने में एक पढ़े-लिखे बेरोज़गार को ज़ुल्म क़बूल कराने की कोशिश में इतना पीटा गया कि

वह जान से हाथ धो बैठा...और सबसे ऊपर प्रधानमंत्री का भाषण कि भारत एक महान् देश है। यहाँ कि जनता का संकल्प अटूट है। और तमाम परेशानियों के बावजूद उनकी पार्टी के शासन की उपलब्धियाँ शानदार रही हैं। उपलब्धियों का उल्लेख...भाषण के नीचे अकालग्रस्त इलाक़े के फ़ोटो छपे थे, जिनमें हड्डियों के ढेर की बग़ल में कुछ नर-कंकाल हाथों में कटोरे लिये खड़े थे। उनके बदन का मांस ग़ायब हो चुका था, आँखें बाहर को निकली आ रही थीं। सबसे नीचे एक कार्टून था, जिसमें एक मंत्री किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए बता रहे थे कि ललित कलाओं के विकास में भारत की खाद्य-स्थिति कितनी सहायक सिद्ध हो रही है...।

उसने सोचा था कि जब तक जागता रहेगा, तरह-तरह के ख़याल इसी तरह परेशान करते रहेंगे, तो वह बत्ती बुझाकर लेट रहा था। कुछ देर बाद लगा था, जैसे फ़र्श के ऊपर कुछ रेंग रहा हो। कुछ देर तक वह उसी तरह दम साधे पड़ा रहा था। वह चाहता था कि पहले निश्चित कर ले कि यह भी कोई वहम तो नहीं। सरसराहट बंद हुई थी, तो उसने फिर आँखें मूंद कर सोने की कोशिश की थी। सिर से पैर तक चादर ओढ़कर वह देर तक चुपचाप पड़ा रहा था। आख़िर में उसने तय किया था कि देख ही ले कि क्या बात है! उसने लेटे-लेटे टेबुल-लैंप जलाया था। चारपाई के नीचे गुड़ी-मुड़ी हुआ अख़बार पड़ा था। कोने के बिल से एक चूहे का सिर झाँक रहा था। वह कान खड़े किये हवा को सूंघता हुआ-सा टकटकी बाँधकर देख रहा था। हवा में उसकी मूँछें फरफरा रहा थीं। उसे देखते ही चूहा बिल में ग़ायब हो गया था। उसने अख़बार उठाकर खिड़की के बाहर फेंक दिया था और अफ़सोस करता हुआ खाट पर लेट रहा था। कुछ देर बाद उसने पाया था कि वह प्लेग, इस बीमारी के दौरान होनेवाली तकलीफ़ों, बिगड़ी हुई शक्लों और सामूहिक मौतों के बारे में सोच रहा है, तो उसने फिर पत्नी को आवाज़ देकर एक गिलास पानी मँगाया था।

पत्नी पानी लेकर आयी, तो उसने चूहे के बारे में पूछ लिया था।

"चूहे बहुत हो गये।" उसने कहा था।

"चूहे...!" पत्नी ने आज तक उस मकान में कोई चूहा नहीं देखा था। वह उसकी बात मानने को तैयार नहीं थी।

"हाँ-हाँ...," वह अतिरिक्त उत्साह से भर कर उठ बैठा था, "ये देखो।" उसने चारपाई हटाकर चूहे का बिल दिखाया था।

पत्नी उसे बेवकूफ़ों की तरह देखने लगी थी। उसे कोफ़्त हुई थी कि वह चूहे का बिल भी नहीं पहचानती।

"इसमें था अभी।" उसने बहुत गम्भीर होकर कहा था।

"अब समझी...उस तरफ पंसारी का मकान है।" पत्नी की आँखों में चमक दिखी थी।

कितनी साफ़ बात थी। उस तरफ़ रहनेवाला पंसारी था और उसके घर में अक्सर दुकान के माल के बोरे रखे रहते थे। हर महीने वह उसे किराया देने जाता था और अपने पसीने की गंध की तरह हर समय महसूस करता रहता था कि वह एक पंसारी का किरायेदार है। दरअसल वह चूहों और किराने के सामान के घनिष्ठ रिश्ते को भूल गया था।

"हूँ-हूँ। अब ?"

"अब क्या...!"

पत्नी गई थी, तो उसने बिल में अख़बार का काग़ज़ ठूँस दिया था। फिर चारपाई पर वापस लेटते हुए तय किया था कि सुबह पंसारी से मकान में चूहा होने की शिकायत करेगा।

"कौन आया था ?" पत्नी ज़ीने की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आयी, तो उसने पूछा था।

पत्नी व्यस्त भाव से धोती के पल्ले से चेहरा पोंछती रही थी।

"रात-बिरात इस तरह बेसमझे-बूझे किवाड़ नहीं खोल देना चाहिए।" उसने कहा था।

"मैं नीचे मुँह धोने गई थी। ऊपर पानी ख़त्म है।" पत्नी ने कहा था।

"ऊपर पानी खत्म है ! आज महरी नहीं आयी ?"

"आयी थी, पर पानी ख़त्म हो गया है।" पत्नी का चेहरा निंदासा हो रहा था। उसने पालने में सोये हुए बच्चे को उठाया था और ब्लाउज़ के बटन खोलकर उसके मुँह में स्तन दे दिया था।

"यह तो बड़ी खराब बात है !" वह भुनभुनाया।

"प्यास लगे तो नीचे चले जाना।" पत्नी की आँखें झपने लगीं।

बत्ती बुझाकर उसने सोने की कोशिश की थी। काफ़ी देर तक यों ही लेटा हुआ वह बच्चे के कुनमुनाने और पत्नी की थपकियाँ देने की आवाज़ें सुनता रहा था। रोशनदान से आता हुआ सामने वाले मकान का प्रकाश एक चमगादड़ की शक्ल में दीवार से आ चिपका था। वह टकटकी बाँधकर उसी की तरफ़ देखने लगा था। कुछ देर बाद उसे महसूस हुआ था कि वह रोशनी के चमगादड़ के अलावा अपने आसपास की किसी भी चीज़ को साफ़-साफ़ नहीं महसूस कर पा रहा, तो उसने आँखें मूंद कर इस एहसास से निजात पाने की चेष्टा की थी। मगर आँखें मूँदते ही उसे लगा था कि

उसके भीतर भी एक वैसी ही काली दीवार है, जिस पर एक बड़ा-सा सफ़ेद चमगादड़ लटका हुआ है, असली, जीवित, साँस भरता और पंख कँपाता हुआ।

वह उठा था और बत्ती जलाकर फिर लेट रहा था।

आधी रात को वह चादर फेंककर हड़बड़ाकर उठ बैठा था और चारों तरफ़ देखकर चीख़ने लगा था। पत्नी ने उठकर बत्ती जलाई थी और उसके सिरहाने जा खड़ी हुई थी। कुछ देर तक वह कुछ भी न समझने के अन्दाज़ में चारों तरफ़ नज़रें दौड़ाता रहा था। फिर उसकी आँखों में उन तमाम चीज़ों की पहचान उभरने लगी थी। वह आश्वस्त दिखा था और आँखों पर गदेलियाँ रगड़कर बोला था, "उफ़ !"

पत्नी के चेहरे पर पहले की घबराहट की जगह सख्ती फैलने लगी थी।

"सुबह चूहे का बिल ज़रूर बन्द करा देना है।" उसने कहा था।

"बड़ी मुश्किल से ही नींद आई थी।" पत्नी हिक़ारत से बोली थी।

उसने इस औरत की तरफ़ देखा था, जो सात सालों से उसकी पत्नी और दो सालों से उसके बच्चे की माँ थी। कोफ़्त हुई थी कि वह इतने अर्से से उसके साथ पति की हैसियत से रहता आ रहा है और ज़िन्दगी के बचे-खुचे साल भी इसी तरह काट देगा।

"आफ़िस के पहले जो चौराहा पड़ता है न, वहाँ महीने भर पहले दंगा हो गया था। सोचता हूँ तबादला करा लूँ।"

पत्नी उसी तरह निरपेक्ष भाव से खड़ी रही थी।

"समझ में नहीं आता, ये साले कार्पोरेशन वाले क्या करते रहते हैं। इधर की सड़क के सारे बल्ब फ़्यूज़ पड़े हैं। शाम के वक्त लगता है, जैसे इस तरफ़ आदमी नहीं भूत रहते हैं। और नालियों में इस क़दर मच्छर पैदा हो गये हैं...।" उसने नाक के आगे कमीज़ का पल्ला लगा लिया था, जैसे मच्छरों को भीतर घुसने से रोक रहा हो।

"बत्ती बुझा दूँ ?" पत्नी उकताये स्वर में बोली थी।

"आखिर स्टेट की भी कोई ड्यूटी होती है, तुम देख लेना, यह ढील-पोल ज़्यादा दिनों तक नहीं चलेगी।" उसने मुट्ठी बाँधकर हाथ को हवा में हिलाया था, रिवोल्यूशन आयेगा...।" वह अपनी बात से आवश्वस्त दिखा था और चारपाई पर बैठा हुआ आगे-पीछे हिलने लगा था, "फिर किसी को किसी से कोई ख़तरा नहीं रहेगा।" वह अपने आप में डूब गया था।

"सोने लगो, तो बत्ती बुझा देना।" पत्नी ने कहा था और अपनी चारपाई पर जाकर लेट रही थी।

"यह मकान-मालिक की मुटल्ली सेठनी है न", वह पत्नी की तरफ़ मुखातिब होकर बैठ गया था. "यह साली बड़ी असभ्य दिखती है। जब भी मैं उधर से गुज़रता हूँ, मुझे देखते ही अपने बच्चे या नौकर पर गला फाड़-फाड़कर चीखने लगती है। जैसे-जैसे...।" उसने पत्नी की तरफ़ देखा था, जो ऊँघने लगी थी।

"बोर हो गये...," उसने अपने आप से कहा था।

"सुबह इसे डिस्पेंसरी में दिखा लाना।" बच्चा कुनमुनाया था, तो पत्नी ऊँघती-सी आवाज़ में बोली थी और उसे थपकियाँ देने लगी थी।

"डिस्पेंसरी...? क्यों, क्यों-क्यों...?"

"आज दिन भर दस्त करता रहा।" पत्नी ने बच्चे की तरफ़ करवट ले ली थी। अब वह एक ढेर की तरह दिखती थी—कमरे में भरे हुए किसी भी सामान की तरह।

वह सहसा ढीला पड़ गया था, "सोचता हूँ, यह मकान बदल देना चाहिए। नक्सलवाड़ी...।"

पत्नी सो गई थी, या सो जाने का बहाना कर रही थी।

"नक्सलवाड़ी...," उसने अपने-आपसे कहा था और चुप होकर छत पर हवा के साथ उड़ते पत्तों की खड़खड़ाहट सुनने लगा था। "रिवोल्यूशन ...सोशल जस्टिस...।" वह फिर चुप होकर सोचने लगा था।

"बोर हो गये...।" उसने जैसे अपने तईं कोई बड़ा आत्म-स्वीकार किया था और सिर के नीचे हथेलियाँ फँसाकर चित्त लेट रहा था।

चारपाई के नीचे से आहटें आई थीं। हर आहट एक-दूसरे से भिन्न, कटी हुई, अपने में स्पष्ट। हर आहट उसकी मुँदी हुई आँखों के आगे एक बेडौल भयावह आकृति के रूप में फैल जाती थी। इससे पहले उसने कभी उन आकृतियों को देखा नहीं था, फिर भी वे उसे एकदम बेपहचानी नहीं लगती थीं। अजीब तरह की रोयेंदार, गिलगिली, सख्त सतहवाली जीवित आकृतियाँ।

उसने उठकर बत्ती गुल की थी और वापस चारपाई पर आकर लेट रहा था। आँखें बन्द करते ही उसे महसूस हुआ था, जैसे वह किसी अँधेरी सुरंग से होकर बेतहाशा भाग रहा हो और वह बेडौल हाथ-पैर-पंखवाली, बेशक्ल, बेशिनाख्त काली आकृति उसका पीछा कर रही हो। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा था। उसका गला जल रहा था। शरीर पसीने से भीगा हुआ था। पत्नी खर्राटे भर रही थी।

"पानी।" उसने लगभग चीखकर कहा था।

पत्नी उसी तरह सोती रही थी।

उसने उसे घुटने से पकड़कर हिलाया था।

"पानी।" उसने गले पर उभर आई नसों पर हाथ फेरते हुए कहा था।

"पानी नीचे है।" पत्नी ने आँखें खोलकर उसकी तरफ़ देखा था।

"सुनो···!" वह हकलाकर कहने लगा था, "आज मैं मर सकता था। बस पर चलते समय एक बार बिलकुल लगा था कि मेरे हाथ छूटने ही वाले हैं...।"

पत्नी फिर ऊँघ चली थी।

"तुमने एक बार एक क़िस्सा सुनाया था, जिसमें एक ख़तरनाक जिन्न एक आदमी को लग जाता है...हर समय उसका पीछा करता है। वेश बदल-बदलकर..."

"पानी नीचे है।" कह कर पत्नी ने करवट ली थी। वह बत्ती बुझाकर लेट रहा था। रोशनदान से आनेवाली रोशनी का वह टुकड़ा अब भी दीवार पर चिपका हुआ था। इस बार वह उसे पैर समेटकर घात में खड़े हुए आक्टोपस की तरह लगा था। प्यास के मारे उसका गला जल रहा था। छत से फिर हवा और सूखे पत्तों के उड़ने की आहट आई थी। उसने उठकर फिर पत्नी का घुटना हिलाया था। पत्नी ने आँखें खोली थीं, तो घिघियाती आवाज़ में बोला था, "सुनो, उधर ज़ीने के पास कोई छिपकर खड़ा है। मैंने अभी-अभी उसके चलने की आवाज़ सुनी है।"

वह उत्तेजना से हाँफने लगा था। उसे लगा था, जैसे कोई भयानक कीड़ा अपने सैकड़ों रोयेंदार पैरों से धीरे-धीरे उसकी रीढ़ की हड्डी पर रेंगता हुआ ऊपर चढ़ रहा हो। उसका शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था और उसके जिस्म के इंच-इंच पर नुकीले काँटे उगते आ रहे थे।

•

षड्यन्त्र

साईंदास बैंच पर सिकुड़ा-सिमटा बैठा था। उससे कुछ हटकर उसकी तरफ़ पीठ किये दोनों घुटनों में सिर डाले बन्तो बैठी थी। बहुत देर से उसमें कोई हरकत नहीं हुई थी, इसलिए लग रहा था जैसे ऊँघ गई हो। उसका दुपट्टा सिर से खिसककर कन्धों के ऊपर आ रहा था और सूखे बालों की दो-तीन मोटी-मोटी लटें चोटी से छूटकर घुटनों को घेरने वाली क़लाइयों पर बिखर आई थीं। थानेदार के जाते समय उसने एक बार बन्तो की तरफ़ देखा था। बन्तो की आँखों में एक विचित्र तरह की जड़ता थी जो आँखों से होकर साईंदास की नसों में उतरती गई थी और एड़ी से चोटी तक उसके शरीर में एक ठंढी झुरझुरी फैल गई थी। वह बन्तो को टोकने जा रहा था कि दुपट्टे को ठीक से ओढ़ ले, पर कुछ कहने के बजाय घबरा कर थाने के गेट की तरफ़ देखने लगा था।

वहाँ थोड़े से लोगों का झुंड पहरे पर खड़े कांसटेबिल की बातों को ग़ौर से सुन रहा था। शुरू में वहाँ काफ़ी लोग थे। कुछ थानेदार की गालियाँ सुनकर चले गये थे और कुछ अपने सन्तोष के मुताबिक़ खोज-बीन करने के बाद खिसक गये थे। अब जो लोग वहाँ खड़े थे, वे या तो एकदम नये थे या इस इरादे वाले कि जब तक साईंदास वहाँ से नहीं हटता, वे भी वहीं डटे रहेंगे।

वह घर से मुश्किल से दस क़दम की दूरी पर रहा होगा कि भीतर से बन्तो की चीख़ सुनाई दी थी। वह लपककर भीतर दाख़िल हुआ तो बन्तो नत्थू से छूटने के लिए हाथ-पैर मार रही थी। साईंदास की दुकान डेढ़ मील से ऊपर पड़ती थी। नत्थू ने जेठ की दुपहरी का सन्नाटा पा लिया था और घर का दरवाज़ा खुला देखकर भीतर घुस गया था। उसे गुमान भी नहीं था कि साईंदास उस समय वहाँ किसी काम से आ टपक सकता है। साईं-दास को देखते ही वह घबरा गया था और बन्तो को छोड़कर तीर की

तरह खुले हुए दरवाज़े से घर के बाहर हो गया था। बन्तो दौड़कर साईंदास से आ चिपटी थी। सारी स्थिति को ठीक से समझते-समझते साईंदास को पहली बार अहसास हुआ था कि बेटी सयानी हो रही है और उसे घर में इस तरह अकेला नहीं छोड़ना चाहिए था। उसकी छाती से चिपककर बन्तो बुरी तरह फूट-फूटकर रोने लगी थी। उसके सिर पर हाथ फेरते-फेरते साईंदास एकदम बेक़ाबू हो गया था और बेतहाशा ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगा था। बात की बात में दरवाज़े पर सारा मोहल्ला इकट्ठा हो गया था। इतने लोगों को देखकर साईंदास को तसल्ली बँधी थी और वह बिफर कर नत्थू के लिए गन्दी-गन्दी गालियाँ बकने लगा था। इतना ख़याल भी नहीं रहा था कि छाती से लगी हुई बेटी खड़ी है और उसके सामने ऐसे शब्द मुँह से निकालना नहीं चाहिए।

बन्तो की तरफ़ इशारे करते हुए लोगों की तरफ़ देखकर उसे सहसा खयाल आया था कि पता नहीं लोग उसकी बातों का क्या मतलब लगा लें। इसलिए उस ने सच-सच बता दिया था कि वह दुकान से लौट रहा था। सन्नाटा देखकर शहर का नामी गुंडा नत्थू उसके घर के भीतर घुस आया था। उसकी बेटी को बेइज़्ज़त करना चाहता था। वह बिजली के खम्भे तक ही आ पाया था कि भीतर से बन्तो की चीख़ सुनाई दी थी। वह लपककर भीतर आया था। उसे देखते ही नत्थू तीर की तरह दरवाज़े के बाहर हो गया था। उसके मन में तो आया था कि उसे पकड़े। पर रह गया क्योंकि पहले तो नत्थू उसके मुक़ाबले में तगड़ा और जवान था, दूसरे वह डरा कि कहीं छुरी-वुरी न लिए हो।

"असली ग़लती तो लाला तुम्हारी है। घर में जवान बेटी को इस तरह अकेला छोड़ना ही नहीं चाहिए," मोहल्ले के हर काम में आगे रहने वाला एक नेता बोला था।

बन्तो ने बैसाख में तेरह पूरे किए थे। आज के पहले उसके जवान होने का तो क्या जवानी की देहलीज़ पर पैर रखने का अहसास भी साईंदास को नहीं हुआ था। नेता द्वारा उतनी-सी लड़की को जवान कहा जाना उसे काफ़ी नागवार गुज़रा था।

"लो अब यों कहते हो। धन्धा नहीं करेंगे तो खाएँगे क्या ? माना कि दो ही प्राणी है, पर सुबह-शाम दो किलो आटा तो चाहिए ही।" क्रोध के असली कारण को छिपा कर साईंदास चिल्लाकर बोला था।

"आप जब घर में घुसे, उस समय उसे किस हालत में देखा था ? मेरा मतलब है, उस समय नत्थू क्या कर रहा था।" एक दूसरे आदमी ने पूछा था।

सवाल का मक़सद समझ कर साईंदास बौखला गया था। "इसकी चीख़ सुनी तो मैंने भी वहीं से आवाज़ दी। मेरी आवाज़ सुनते ही नत्थू निकल भागा।"

"यानी उस समय आप दरवाज़े के भीतर नहीं हुए थे। आपकी आवाज़ सुनकर ही वह सड़क पर आ गया था?" वह आदमी जिरह करने लगा।

"जी हाँ, जी हाँ।" साईंदास ने बिना कुछ ठीक-ठीक समझे कह दिया था।

"पर इसके पहले तो आप ने कहा था कि आप घर के भीतर दाखिल हो चुके थे। चाहते तो उसे पकड़ सकते थे, पर डर गए कि छुरी न लिए हो कहीं।" पूछने वाला अजीब शान से भीड़ की तरफ़ मुख़ातिब हो गया।

"अब इस तरह से एक-एक चीज़ तो मुझे याद नहीं। जो ख़ास बात थी सो बता दी। बस्स।" साईंदास परेशान हो कर बोला था।

भीड़ में निराशा फैल गई थी। नेता दो क़दम आगे बढ़ आया था। "देखो लाला, ये बातें इसलिए पूछी जा रही हैं कि थाने और अदालत में एक-एक बात को ठोक-बजा कर देखा जायेगा। और फिर रिपोर्ट में तो पूरी बात खोलकर लिखानी ही पड़ेगी।"

साईंदास को होश आया था कि बात कहाँ से कहाँ तक आ पहुँची है और किस हद तक बढ़ सकती है। उसे यह भी खयाल आया था कि नत्थू की यह पहली हरकत नहीं है। उसकी पुलिस से दोस्ती है और आज तक उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सका।

"रिपोर्ट!" साईंदास झिझकती हुई आवाज़ में बोला था—"रिपोर्ट से क्या होगा?"

"लो और सुनो," नेता भीड़ को सम्बोधित करता हुआ बोला था—"दिन-दहाड़े एक गुंडा तुम्हारे घर में घुस आया और तुम कानों में तेल डाले बैठे रहोगे।"

"मैं बग़ैर सोचे-समझे कोई क़दम नहीं उठाना चाहता। लड़की की बात है।" साईंदास ने दबी ज़बान से असली बात कह दी थी—"इसके अलावा रिपोर्ट लायक़ कोई बात नहीं हुई। थाने वाले ठोस जुर्म चाहते हैं। एक कौड़ी भी तो नहीं ले गया।"

"एक गुंडा दिन-दहाड़े तुम्हारी लड़की को बेइज़्ज़त कर गया, यह कोई जुर्म नहीं हुआ। अगर आज तुम चुप बैठे रहोगे तो कल किसी दूसरे के घर में घुसेगा।"

साईंदास अधिक ज़ब्त न कर पाया। बिगड़कर बोला था—"बेइज़्ज़त कर गया? मतलब?"

उसके क्रोध की उपेक्षा करता हुआ नेता भीड़ की तरफ़ देखकर व्यंग्य से हँस दिया था—"सिड़ी रहोगे लाला तुम ! अरे, एक गुंडा तुम्हारे घर में घुस जाए तो तुम उसे बेइज़्ज़ती नहीं कहोगे तो क्या इज़्ज़त-आफ़ज़ाई कहोगे।"

साईंदास पछताता हुआ सड़क पर आ गया था। एक बार फिर उसकी इच्छा हुई थी कि लोगों को समझाने का प्रयत्न करे कि रिपोर्ट करने से बजाय लाभ के नुक़सान होने का डर अधिक है। पर जैसे उसकी ज़बान को लकवा मार गया था। अपने बारे में कोई भी फ़ैसला करना उसके हाथ से बाहर की बात हो चुकी थी। वह अपने आपको बेहद घृणित और दयनीय प्राणी लगने लगा था, कुछ वैसा ही, जैसे दूसरे मौक़ों पर खुद को ऐसी ही घटना से पीड़ित दूसरी लड़कियों के बाप लगते थे।

भीड़ को गेट पर छोड़कर नेता साईंदास को थाने के भीतर लिवा ले गया। उन्हें देखकर रोज़नामचा भरने वाला मुंशी बाहर निकल आया।

"सिंह जी कहाँ हैं ?" थानेदार से अपनी घनिष्ठता प्रकट करते हुए नेता ने रोब से पूछा था।

"कहिए !" मुंशी ने कहा था और साईंदास को घूरने लगा।

"रिपोर्ट लिखानी है एक। ज़रूरी है।"

"फ़रमाइए ! फ़रमाइए !"

"वो नत्थू है न ! आज दिन-दहाड़े इन के घर में घुस गया। ये दुकान पर थे। घर पर अकेली लड़की थी।"

"अच्छा, फिर ! आगे कहिये !" मुंशी ने साईंदास को दिलचस्पी से देखा।

"तभी ये आ गये। इन को देखते ही वह रफ़ूचक्कर हो गया।"

"अरे, बस !" मुंशी को निराशा हुई।

"इन को देखते ही भाग निकला। वैसे आया ख़राब इरादे से था।"

"रिपोर्ट से कोई फ़ायदा नहीं !" मुंशी मुँह बनाकर बोला।

"क्यों नहीं कोई फ़ायदा ?" नेता अकड़ गया था।

"आपने उसे पकड़ा !" मुंशी ने साईंदास से पूछा था।

"नहीं, मैं डरा कि कोई हथियार न लिये हो !"

"ठीक किया। वह अपनी तहमत की अंटी में हमेशा छह इंची फलवाला चाक़ू छिपाये रखता है। कुछ ज़ेवर या नक़दी वग़ैरा ले गया ?"

"नहीं !" साईंदास ने कहा और अहसास भाव से नेता की तरफ़ देखने लगा।

"फिर क्या रिपोर्ट करने आये हो ! ख़ाक ! ज़रा सुनूं तो कौन-सी

दफ़ा लगेगी ?" मुंशी साईंदास पर नाराज़ हो गया था।

"एक दो का नोट तो देना।" नेता फुसफुसा कर साईंदास से बोला था।

नोट को जेब के हवाले करने के बाद मुंशी ने कहा, "चलिए पहले दरोग़ा जी से मिल लें। जैसा वे हुक्म करें।"

उन्हें बरामदे में रोक कर मुंशी चिक उठाकर भीतर घुस गया। पाँच-छह मिनट बाद भीतर से दरोग़ा की भारी आवाज़ आई—"भीतर आ जाइये !"

"हूँ !" दरोग़ा ने एक बार साईंदास को सरसरी निगाह से देखा। "एक बार सारा किस्सा बिलकुल सही-सही मेरे सामने बयान कर जाइये।"

पूरी बात सुन लेने के बाद दरोग़ा ने अविश्वास से सिर हिलाया—"असली बात तो तुम छिपा ही गये !"

"बात जो थी सो आपके सामने खुलासा कह दी !" साईंदास हकला गया।

"तुम्हारे दरवाज़े के सामने की सड़क तो एकदम सीधी पड़ती है न ?"

"हाँ जी !"

"तुम ने नत्थू को अपनी आँखों से घर में घुसते देखा था ?"

"नहीं जी !"

"तो तुम्हारे हिसाब से वह कितनी देर तक तुम्हारे मकान के भीतर रहा ?"

"मैं क्या बता सकता हूँ !" साईंदास डरकर बोला।

"कम से कम १५-२० मिनट तो रहा ही होगा ?"

दरोग़ा के सवाल का मतलब न समझने का बहाना करते हुए साईंदास ने जीभ निकाल कर होंठों को तर किया था। "मैं जैसे ही भीतर दाखिल हुआ। मुझे देखते ही भाग निकला।"

"तुम्हारी लड़की किस हालत में थी उस वक़्त ?"

"बस जी, खड़ी-खड़ी चीख़ रही थी। मुझे देखते ही घबरा कर मुझसे चिपट गई और रोने लगी।"

दरोग़ा उसे छेदने वाली नज़रों से देखता रहा। फिर मुस्कराहट ला कर बोला—"बस अब बहुत मज़ाक हो लिया ! ज़्यादा तो उड़ो मत मुझसे !" और उसने मुंशी तथा नेता की तरफ़ भेद भरी निगाह से देखा था। दोनों ने उसके समर्थन में अपना सिर हिलाया। साईंदास को लगा था वह किसी भयंकर षड्यन्त्र में फँस गया है।

"सरासर 'रेप' का मामला है।" दरोग़ा ने फ़ैसला देने के अन्दाज़ में

कहा।

"यह ग़लत है साहब !" साईंदास हड़बड़ा कर बोला—"मैं खुद वहाँ मौजूद था। इसके अलावा मेरी लड़की अभी बच्ची ही है।"

"कित्ती उम्र है लौंडिया की ?"

"बैसाख में तेरह की हुई है।"

"डाक्टरी जाँच होने पर सही-ग़लत सबका पता चल जायेगा मैंने बारह-बारह साल की लौंडियों को हमल गिराते देखा है !" दरोग़ा ने निर्णयात्मक स्वर में कहा था—"मुंशी जी, जाओ तुम उस लड़की को ले आओ। दो सिपाहियों को नत्थू को पकड़ने के लिए भेज दो।"

साईंदास ने अपनी पूरी ताक़त से बन्तो को बुलाए जाने का विरोध करना चाहा था। पर दोपहर से अब तक की घटनाओं ने जैसे उसे भीतर से एकदम निचोड़ लिया था।

बन्तो आई तो साईंदास जैसे सोते से चौंक गया। बन्तो का चेहरा सफ़ेद पड़ गया था। चेहरे पर असाधारण गम्भीरता थी जो उतनी उम्र की बच्चियों के चेहरे पर नहीं होती और जो साईंदास ने अब से पहले कभी नहीं देखी थी। जब वह अपने शरीर को समेट कर दरवाज़े से भीतर आ रही थी तब साईंदास को उसका क़द कुछ अधिक लगा, शरीर भरा हुआ और उसकी समझ भरी-पूरी लड़कियों की तरह लगी थी। और उसे उसके बच्ची होने के पक्ष में दिये गये अपने तर्क काफ़ी कमज़ोर लगने लगे थे।

"जो कुछ तुम्हारे साथ गुजरा, उसे राई-रत्ती सही-सही कह जाओ !" दरोग़ा ने सख्त आवाज़ में कहा।

बन्तो ने निरीह निगाहों से साईंदास की तरफ़ देखा, फिर आँखों पर अँगुलियाँ रखकर धीरे-धीरे सिसकने लगी। साईंदास को डर लगा था। "कह दे न सच्ची-सच्ची बात !" उसने पुचकार कर कहा।

"जी दुपैर का वक्त था। मैं दालान के चबूतरे पर बैठी कपड़े सिल रही थी। इतने में किसी के आने की आहट हुई। देखा नत्थू था। उसने पूछा कि बाबू जी कहाँ हैं। मैंने कहा कि वो तो दुकान पर हैं। वहीं जाओ...।" बन्तो अटकी।

"हाँ, हाँ, फिर क्या हुआ ? सच-सच कहती जाओ ?" दरोग़ा ने कहा।

"इतना कह कर मैं भीतर जाने लगी तो उसने मुझे पीछे से पकड़ लिया...मैं डर कर चीखने लगी...।"

"हाँ, हाँ, किधर पकड़ा था ?" दरोगा ने टोका।

"इधर !" बन्तो ने दायें कन्धे के नीचे हाथ रख दिया—"मैंने कहा आने दे बाबू जी को कैसा मजा चखाती हूँ। इस पर वह बोला कि मैं तेरे

बाबू से नहीं डरता। मैं फिर चीखने लगी, तभी बाबू जी आ गये और वह तेज़ी से बाहर भाग निकला...।" बन्तो आँखों पर दुपट्टा रख कर फिर सिसकने लगी।

"बस !" दरोग़ा ने अविश्वास से बोला।

"बस जी, और क्या होता ?"

"अभी डाक्टरी जाँच होगी तो पता चलेगा और क्या होता।" दरोगा डपटकर बोला।

साईंदास को लगा था जैसे दरोग़ा के उस एक वाक्य ने उनके बीच के बाप-बेटी के रिश्ते को उघाड़ दिया हो और वे दोनों एक दूसरे के आगे सरे आम नंगे हो गये हों। उसे बग़ल में बैठी अपनी बेटी काफ़ी-कुछ अजनबी-सी लगी थी। उसकी तरफ़ देखने का साहस उसको नहीं हुआ। बन्तो और भी ज़ोरों से सिसकने लगी। "बस्स साहब, और कुछ नहीं हुआ।"

बन्तो रोती-रोती घुटनों में सिर दे कर चुप हो गई थी। साईंदास नीची गर्दन किये पैरों के नख से फ़र्श को कुरेदने लगा। दरोग़ा और नेता आपस में फुस-फुसाकर बातें करने लगे।

बरामदे में जूतों की आहट हुई और दो सिपाहियों के साथ नत्थू भीतर आता दीखा। "क्यों भई नत्थू, तुमने फिर अपनी हरकतें शुरू कर दीं !" दरोग़ा ने अपनी आवाज़ को सख्त बनाकर कहा।

नत्थू बिना जवाब दिये उपेक्षा से साईंदास की तरफ़ देखने लगा।

"ये कहते हैं कि दुपहरी में इनके घर में घुस कर तुमने इनकी लड़की के साथ छेड़ख़ानी की ?" थानेदार ने फिर कहा।

"सिर्फ़ छेड़खानी !" नत्थू साईंदास से नज़रें मिलाकर बेफ़िक्री से हँस दिया।

"रिपोर्ट करने आये हैं।"

"ज़रूर रिपोर्ट लिखिये हुज़ूर। पर सिर्फ़ छेड़खानी के लिए भला कोई आदमी अपनी जान जोखिम में डालता है !" नत्थू इतमीनान से कुर्सी सरकाकर दरोग़ा के बग़ल में बैठ गया। साईंदास को लगा कि रास्ते में ही पुलिसवालों ने नत्थू को सिखा-पढ़ा दिया है कि क्या कहना है।

दरोग़ा प्रश्नवाचक नज़रों से साईंदास को देखने लगा मानो कह रहा हो—'अब क्या कहते हो ?'

"उस दिन चीफ़ साहब को जुए का अड्डा बताया था। आपने छापा क्यों नहीं मारा ?" नत्थू ने फिर कहा।

"वो कोई जुआ था ? लड़के थे। पैसों से खेल रहे थे। दो-दो हाथ मार कर छोड़ दिया था।"

"वो हेडमास्टरनी है न ? उसके यहाँ रात को कभी-कभी बालकराम आता है।"

"कौन बालकराम !" दरोग़ा ने उत्सुकता से पूछा।

"बालकराम को नहीं जानते ? ग़ल्ले की आढ़त करता है। पिछले साल चेयरमैनी के लिए खड़ा हुआ था।"

"अरे वो ? वो बुड्ढा ?"

"हाँ, कभी धरिये न उसको ! अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए दो-चार हज़ार बात की बात में दे देगा। वैसे बहुत मक्खीचूस है।" नत्थू हँसने लगा।

"मैं उसे बहुत सीधा-सच्चा आदमी समझता था।"

"एक और बहुत प्राइवेट खबर है।" कहकर नत्थू ने साईंदास की ओर देखा।

"अच्छा, अच्छा, ऐ मुंशीजी, तुम इन लोगों को लेकर थाने चलो, हम आते हैं", दरोग़ा ने मुंशी को हुक्म दिया।

थाने के बरामदे में पहुँचकर वे फिर एक खाली बेंच पर बैठ गये। थाने के गेट पर थोड़ी-सी हलचल हुई। साईंदास ने उदासीनता से अपनी ओर पीठ किये बैठी बन्तो को देखा, फिर नीम की फुनगियों पर गिरती-डूबती सूरज की रोशनी को देखने लगा।

कुछ देर बाद थाने के गेट पर नेता प्रकट हुआ, "एक ही रास्ता है बचत का।" बैठते ही वह सर्वज्ञ होने के भाव से मुस्कराया, "दरोग़ाजी कहते हैं कि बलात्कार का मामला है। नत्थू भी यही कहता है। मिलीभगत है दोनों की। दरोग़ा जी तुले हैं कि लड़की की डाक्टरी जाँच करायेंगे।"

"एं···!" साईंदास ने कुरते की आस्तीन से अपनी आँखें पोंछ लीं।

"ये नत्थू है न ! ये सरगना है पुलिस का। दरोग़ा जी उसके खिलाफ़ कुछ नहीं करना चाहते। वहाँ तो लस्सी उड़ रही है। मुझे इसका बिलकुल पता नहीं था।" नेता उसी तरह मुस्कराए जा रहा था।

"हाँ, तो···?"

"पार्टीशन के पहले रावलपिण्डी में सराफ़े की दुकान थी तुम्हारी। काफ़ी पैसे वाले आदमी थे···?"

"हाँ थी।" साईंदास की आँखें भींग आईं। नथुनों से एक लम्बी साँस निकल गई। "भारी कारोबार था। दर्जन भर तो नौकर रहे होंगे।"

"यहाँ आने पर २२,००० क्लेम के मिले थे ?"

"हाँ, मैंने क्लेम तो ८०,००० का किया था। ज़मीन-जायदाद तो एक लाख से भी ऊपर होगी। पर मंज़ूर २२,००० ही हुए। तीन-साढ़े तीन

हज़ार अफ़सर लोगों को देने पड़े थे। दो साल तक दौड़-धूप करनी पड़ी। पर इन बातों को तो बहुत साल हो गये।"

"दरोग़ा जी हज़ार रुपया माँगते हैं। मैंने बहुत कह-सुनकर पाँच-सौ पर राज़ी कर दिया है।" अन्त में नेता ने मतलब की बात कही।

साईंदास चेहरे पर हाथ फेरता हुआ खड़ा हो गया। "किस बात के लिए रुपये दूँ! कौन-सा जुर्म किया है मैंने?"

"जुर्म तो तुमने नहीं किया!" नेता साईंदास की नासमझी पर हँस दिया—"पर ज़रा सोच-समझ लो। डाक्टरी जाँच होगी, फिर अदालत जाना पड़ेगा। वहाँ वकीलों की जिरह। लड़की वाला मामला है। सब बातें ठंडे दिमाग़ से सोच लो।"

"अच्छी दिल्लगी है," साईंदास पराजित स्वर में बोला और माथे की सिलवटें सहलाने लगा, "कहाँ से लाऊँ इतने रुपये!"

"डाकख़ाने में तुम्हारा काफ़ी रुपया जमा है। नत्थू को तुम्हारे बारे में एक-एक बात का पता है। उसने सब बातें दरोग़ा जी को बता दी हैं," कह कर नेता फिर उसी तरह मुस्कराने लगा।

साईंदास कुछ देर कौतुक से नेता का चेहरा देखता रहा। फिर खोखली आवाज़ में बोला, "मेरी सेहत देखते हो! ये उमर दुकानदारी करने की है! उस पर भी रोज़ डेढ़ मील चलकर जाता हूँ कि रुपया-धेला जो भी मिले वही सही। धंधा मुझे कभी फला नहीं। फिर कुछ दिनों बाद लड़की के हाथ पीले करने पड़ेंगे। और मेरे हाथ-पैर कब तक चलते रहेंगे? ज़्यादा से ज़्यादा दो-तीन साल तक और। तब...तब...?"

रात झुक आई थी। एक सिपाही बरामदे की मेज़ पर लैम्प जला कर रख गया था। साईंदास ने कंधे से छू कर बन्तो को सन्केत किया, "चल बेटी।"

गेट के धुँधलके में वे दोनों अपराधियों की तरह शर्म से सिर झुकाये सड़क पर पहुँच गये। "अब यहाँ रहेंगे नहीं बन्तो!" साईंदास ने बेटी के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "बुज़ुर्गों ने कहा है कि जिस जगह बेइज़्ज़ती हो जाये, वह जगह ही छोड़ देनी चाहिए। कल यह क़स्बा छोड़ देंगे। तू रो मत!"

और वह बन्तो के पीछे-पीछे से रास्ता टटोलता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

दूसरे किनारे पर

पुरुष एक के बाद एक तीन सिगरेटें पी चुका था और अब नर्वस होने लगा था। उसने महसूस किया था कि लगातार धुआँ पीते रहने कारण उसके गले में ख़राशें पैदा हो गई हैं और जीभ फूल रही है। आख़िरी कश लेने के बाद सिगरेट के टुकड़े को फेंकते हुए उसने तय किया कि अब और सिगरेट नहीं पियेगा। इस निश्चय के थोड़ी देर बाद उसने अपने को बुरी तरह ख़ाली महसूस किया। उसने चालाकी से विज़िटर्स-रूम की दूधिया रोशनी में अपने आस-पास बैठे अपने-अपने में मशग़ूल फुसफुसा कर बातें करते दूसरे जोड़ों को देखा था जिनके बारे में वह कुछ भी नहीं जानता था। उसे लगा था कि वहाँ बैठे स्त्री-पुरुष उसी की तरह चौकन्ने हैं और दूसरों के प्रति हिक़ारत से भरे हुए हैं।

कोने वाली टेबल पर खाकी रंग की साड़ी और सफ़ेद हाफ़-कोट पहने एक भरे हुए शरीर वाली औरत बैठी हुई थी। उसका रंग गोरा, नाक-नक़्श तीखे, आँखें बड़ी-बड़ी और संजीदा थीं। बाल छोटे-छोटे, रूखे और छिटके हुए थे। स्थूलता के बावजूद उसके शरीर का मांसल कसाव खींचता था। उसके साथ वाला पुरुष चाकलेटी रंग का धारियोंदार सूट पहने था। उसके आधे से ज़्यादा बाल सफ़ेद हो रहे थे। होठों पर मक्खी-मूँछ थी जिससे उस का समूचा व्यक्तित्व हास्यास्पद और निरीह लगता था। उसके बारे में सिर्फ़ एक ही बात प्रभावित करती थी कि वह उस रोबीली महिला के पास बैठा है और उसका 'कुछ' है। उसके चेहरे पर महिला जैसा आत्म-विश्वास नहीं था। वह आपस में अँगुलियाँ उलझाये औरत से निरपेक्ष हो कर फ़र्श पर दृष्टि गड़ाये था। औरत के चेहरे पर शोक के चिह्न थे। अपनी जगह पर बैठे-बैठे पुरुष ने उनके बारे में निष्कर्ष निकाला—यह कुछ अर्से के लिए बाहर जा रहा होगा। उसकी साथिन को अफ़सोस हो रहा है कि यह जा रहा है।

दूसरे कोने में एक साँवली बुढ़िया-सी, पर चुस्त-चालाक दिखने वाली औरत अपनी बग़ल में बैठे बड़ी-बड़ी मूँछों वाले को सम्बोधित करती हुई अपने सामने खड़े ग्यारह-बारह वर्ष के छोकरे को धारा-प्रवाह अँग्रेज़ी में डाँट रही थी। औरत की उम्र पचपन के आसपास होगी, नौजवान की तीस के लगभग। औरत का रंग गहरा साँवला था। चेहरा पत्थर जैसा सख्त और ठंडा। आँखों में आसपास की हर चीज़ के लिए हिक़ारत। बोलते वक़्त उसकी शक्ल अजीब तरह की डरावनी और वीभत्स हो उठती थी। वह दोनों हाथों की अँगुलियाँ आपस में फँसाये पहले छोकरे को घूरती, फिर नौजबान की तरफ़ देखती हुई एक साथ कई जुमले बोल जाती। नौजवान जो अपनी बड़ी-बड़ी बेतरतीब मूँछों, दुबले शरीर और गम्भीर आँखों के कारण अजीब लग रहा था, वह उसकी हर बात के समर्थन में सिर हिलाता और अपने शालीन तरीक़े से छोकरे को डाँट देता।

वे बच्चे को उसके भविष्य का हवाला देकर उसे अपने दिये हुए साँचे में ढालने की कोशिश कर रहे थे। औरत कभी डिसीप्लिन की चर्चा करती, कभी एटीकेट की, कभी लड़के की लापरवाही की। कुल मिलाकर औरत कुटनी जैसी लग रही थी। लड़का सहमा और भयभीत दिख रहा था। वह डरी हुई नज़रों से उन दोनों के ग़ुस्से का जायज़ा लेता और बेचारगी से उनकी हर बात के उत्तर में सिर हिला देता।

बाहर बरामदे में अन्धकार था। या तो वहाँ का बल्ब फ़्यूज़ हो गया था, या फिर वहाँ रोशनी का कोई पाइन्ट था ही नहीं। वहाँ दो अधेड़ क़िस्म के लोग कुर्सियों पर बैठे-बैठे अपनी 'लड़कियों' का इन्तज़ार कर रहे थे। भीतर से वे भी घबराये, ऊबे हुए या उत्तेजित थे। उनके चेहरे तमाम दूसरे लोगों की तरह सख्त और निरपेक्ष थे जो वहाँ के माहौल की विशेषता थी।

सड़क की तरफ़ देखते हुए पुरुष ने एक सिगरेट सुलगाई। वह— उसकी मित्र आने वाली होगी। 'यू कैप्ट मी वेटिंग फ़ॉर क्वाइट लाँग...थ्री सिग-रेट्स' फिर उसने अपने-आपको सुधारा—'आई वाज़ अफ्रेड, यू माइट नाट लाइक टू सी मी...' यही ठीक रहेगा। वह आयेगी तो उसे सिगरेट पीता हुआ देखेगी। यह ठीक रहेगा। हालाँकि पुरुष को पता था कि उसे सिगरेट के धुएँ से परहेज़ है। कुछ मिनट बेताबी से इन्तज़ार करते रहने के बाद वह सिगरेट फेंकने के बहाने बाहर गया। वह पूछने ही जा रहा था कि चपरासी ने खुद ही बताया, "एक सौ उनतीस-बी ?"

"हाँ, हाँ," चौकीदार की मुस्तैदी से वह प्रभावित हुआ। उसने सिगरेट से सिगरेट सुलगाकर जलते हुए टुकड़े को गलियारे की तरफ़ डाल

दिया। स्पष्टतया इसका असर चपरासी पर अच्छा ही हुआ। वह और भी नम्रता से बोला, "आप बैठें। आ रही है..."

"अच्छा, अच्छा", वह पहले से ज़्यादा आश्वस्त क़दम रखता हुआ फिर विज़िटर्स-रूम में अपनी कुर्सी पर बैठकर इन्तज़ार करने लगा। 'वह इस वक़्त आइने के सामने खड़ी होगी...' उसने सोचना शुरू कर दिया—'और अपने को निहार रही होगी। हो सकता है, वह उसी साड़ी में आये जो कुछ दिनों पहले उसने उसे पार्सल से भेजी थी। उसकी कीमत बहत्तर रुपए, पचासी पैसे...'

सहसा वह दरवाज़े से आती हुई दीखी। उसने अंदाज़े से पहचाना और उठकर खड़ा हो गया। निगाहें मिलते ही वे एक साथ मुस्कराए। उन्हें लगा कि यह औपचारिकता नहीं थी। स्वीकृति थी। एक शुरूआत, जिसके बारे में वे ज्यादा नहीं जानते थे।

"यू कैप्ट मी वेटिंग।" उसकी तरफ़ देखता हुआ पुरुष हड़बड़ा गया और सोचा हुआ जुमला भूल गया। उसकी हड़बड़ी से स्त्री आश्वस्त दिखी और ज़्यादा आत्मीयता से मुस्काने लगी।

"आई वाज़ अफ्रेड, यू माइट नाट लाइक टू सी मी!" अपना जुमला खत्म करने के बाद पुरुष अपनी झेंप को छिपाने के लिए मुस्कराने लगा। उसकी मुस्कराहट खुली हुई और बच्चों जैसी थी। उसकी समझ में लगा कि उसकी हड़बड़ाहट का कारण सर्दी थी जो वह अर्से से महसूस कर रहा था। उसने सिर्फ़ एक ऊनी पैन्ट और पूरी आस्तीन का पुलओवर पहन रखा था। "सर्दी बहुत है," उसने कहा और बेतकल्लुफ़ी प्रकट करता हुआ बैठ गया।

"मुझे आने में देरी हुई। दरअसल मैंने दोपहर को आपका काफ़ी इंतज़ार किया था।"

पुरुष खुश दिखा। "सिगरेट पीता रहूँ।"

और उसने सहमति दी तो उसने सिगरेट से सिगरेट सुलगा कर टुकड़े को फ़र्श पर मसल दिया।

"चाय लेंगे या कॉफ़ी ?"

"कुछ भी पी लूंगा," नथुनों से धुआँ छोड़ते हुए पुरुष ने इस तरह कहा जैसे सिगरेट के होते उसे किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती।

बरांडे में जाकर औरत कॉफ़ी के लिए बोल कर फिर उसकी बग़ल में आ बैठी। पुरुष को पता था कि वह उससे कम से कम दस वर्ष बड़ी है। फिर भी अपनी शालीनता और चुस्ती के कारण वह उसे पसन्द आ रही थी। औरत का रंग गोरा, आँखें बड़ी-बड़ी और भावहीन थीं। उसने अपने

बालों को स्कार्फ़ से ढक रखा था। उसके दाँत नीले-सलेटी रंग के थे। इनमें से कितने नक़ली हो सकते हैं—पुरुष को सोचना पड़ गया ।

"आपको विश्वास नहीं आ रहा होगा कि मैं सचमुच आऊँगा।" उसकी तरफ़ झुकता हुआ पुरुष आत्मीयता से मुस्कराया।

"मैं कह नहीं सकती !" औरत हँसी। उसकी हँसी पहले से ज्यादा खुली हुई थी। "आज ही मैंने आपके लिए एक पार्सल भेजा है।"

"पार्सल !" पुरुष खुश होकर बोला—"घर पहुँचने पर मिलेगा। क्या है उसमें ?"

"एक सिल्क की साड़ी, आपकी पत्नी के लिए। मैंने अपने लिए ख़रीदी थी। पर बाद में उसका रंग मुझे पसन्द नहीं आया तो आपके नाम पार्सल कर दी।" औरत आत्मविश्वास से मुस्कराने लगी। उसे पता था कि कितनी हद तक जाने तक पुरुष बुरा नहीं मानेगा।

"चलिये जो पसन्द न आया करे, वह हमें दे दिया कीजिये !" पुरुष चापलूसी के भाव से बोला। उसे पता था कि आम औरतें चापलूसी से प्रसन्न हो जाती हैं। यहाँ तक वह उसे नाराज़ करने के लिए नहीं तो आया था।

कैन्टीन का नौकर कॉफ़ी का गिलास मेज़ पर रख गया। पुरुष ने स्त्री से एक कॉफ़ी खुद के लिए मँगाने का आग्रह किया। औरत ने इंकार कियातो चुपचाप गिलास उठा कर अकेला ही पीने लगा। औरत को उसकी उदासी और आज्ञाकारिता पसन्द आई। उसे लग रहा था कि पुरुष उसे पसन्द आ रहा है।

"दोपहर को आया था। पर वह वक़्त मिलने का नहीं था। सो आपके लिए एक एक्सप्रेस पत्र सड़क वाले लेटरबाक्स में छोड़ कर अपने होटल चला गया। रियली आई डिड नाट नो दैन, आई वुड कम टू सी यू टु योर हॉस्टेल।"

"तुम चाहते तो दोपहर को मिल सकते थे। तुम्हें चपरासी को बोलना चाहिए था।"

"विज़िटिंग आवर्स शाम छह से नौ—गेट पर तख्ती पर लिखा हुआ है," पुरुष ने सफ़ाई दी।

"अरे मैंने उस तख्ती को आज तक नहीं देखा। अठारह वर्ष हो गये इस हॉस्टल में रहते हुए।" स्त्री ने अचरज प्रकट किया—"वैसे, विज़िटिंग आवर्स यही हैं। तुम चाहते तो चपरासी से बुलवा सकते थे।"

"मैंने ठीक नहीं समझा। एक्चुअली आई डिड नाट डेयर। सिगरेट पी लूं ?"

"पी लो", औरत उसकी तरफ़ देखती हुई मुस्कराई। काफ़ी देर तक। जिससे दोनों को लगा कि वे और भी नज़दीक आ गये हैं। एक-दूसरे के लिए थोड़ा-सा और खुल गये हैं। पुरुष को प्रसन्नता थी कि उसने स्त्री की एक और हद तोड़ दी है। शुरू के कई पत्रों में स्त्री ने सिगरेट पीने वालों के प्रति अपनी असहिष्णुता का ज़िक्र किया था। स्त्री उसकी सिगरेट पीने की ज़िद को सरासर बचकाना मान रही थी। उसे पुरुष पर लाड़ आ रहा था।

दरवाज़े से चुस्त चूड़ीदार और कुर्ता पहने २०-२२ साल की एक लड़की भीतर आई थी और तेज़ी से दौड़कर सामने की कुर्सियों पर बैठे दोनों पुरुषों के कन्धों से झूल गई थी।

"यहाँ से अब चला जाये।" स्त्री एकदम उधर न देखती हुई उठ खड़ी हुई। उसने अपना स्कार्फ़ कंधों पर आ जाने दिया। पुरुष ने देखा, उसके बाल खूब घने, चिकने और छोटे-छोटे थे। पुरुष तय नहीं कर पा रहा था कि वह अच्छी या बुरी कैसी लग रही है। फिर भी उसकी बग़ल में उतने आत्मीय ढंग से खड़ा होना उसे अच्छा लग रहा था। स्त्री को उस लड़की पर ग़ुस्सा आ रहा था—खूसट क़िस्म का। वह ईर्ष्याग्रस्त थी।

"तुम ने देखा!" गेट के बाहर फुटपाथ पर उसने पुरुष की बग़ल में चलते हुए गम्भीर भाव से कहा—"नये लोगों में उद्दण्डता किस हद तक बढ़ गई है। जब तक ये आस-पास के लोगों को आफ़ेंड नहीं करेंगे, महसूस ही नहीं करेंगे कि कोई खुशी की बात हुई है।"

"यह दोगली सभ्यता का नमूना है। ए सिम्पटम ऑफ़ द हायब्रिड कल्चर...!"

हालाँकि अपनी समझ में पुरुष ने काफ़ी होशियारी की बात कही, पर औरत को पसन्द नहीं आई। "यह सरासर बदतमीज़ी है। डिसरिगार्ड ऑफ़ अदर्स। बैड मैनर्स!" स्त्री ने कहा और होंठ बिचका लिए। पुरुष की समझ में नहीं आया कि अब क्या कहना चाहिए अतः वह चुप रह गया।

वे अँधेरी और ख़ाली फ़ुटपाथ पर चल रहे थे। दाईं ओर कोलतार की, नीम-रोशनी में चमकती, चौड़ी सुनासान सड़क थी और उस पार एक हज़ारों खिड़कियों वाली चमकती हुई इमारत।

"तो अब कहाँ चलना है?" स्त्री ने रुक कर प्रश्न किया।

"मेरे होटल चलिए।"

"किधर को?"

"इधर है। क्या नाम है, उस जगह का? मैं इस शहर में पहली बार आया हूँ। हाँ, फ़तहपुरी..."

"नम्बर २८ की बस मिलेगी। मैं सुबह इसी बस से अपने आफ़िस जाती हूँ।"

"कोई स्कूटर मिल जाता !"

"इस वक़्त इधर स्कूटर नहीं आते।"

"टैक्सी ?"

"टैक्सी-स्टैण्ड तो पीछे छोड़ आये।"

वे लौटने लगे।

टैक्सी में पुरुष ने काफ़ी सावधानी बरती। हालाँकि टैक्सी वाले ने उनके बैठते ही भीतर की बत्ती गुल कर दी थी। सड़क के दोनों तरफ़ फ़ुटपाथ की रोशनियाँ बहुत मद्धिम थीं, लैम्प-पोस्टों के बीच का फ़ासला काफ़ी था और टैक्सी वाला खुद एक निहायत शरीफ़ाना और बेहरकत चुप्पी साधे हुए था, जो शायद उस बेहद फ़ास्ट ट्रेफ़िक, शोर और एक-दूसरे से बेख़बर भीड़ वाले शहर में उसके धन्धे का खास हिस्सा बन चुकी थी। बैठते समय औरत के मन में हल्की-सी दहशत थी कि बाहर से इतना भावुक और गम्भीर दीखने वाला पुरुष टैक्सी की सुरक्षा का फ़ायदा लेता हुआ उसके साथ कोई बदतमीज़ी करेगा, पर अब तक उसे पुरुष के तमाम कमज़ोर कोनों का पता चल चुका था और वह आश्वस्त थी। फिर भी वह औरत थी और पुरुष को दो वर्ष पहले उसकी एक कहानी पढ़कर उसे पत्र लिखने लगी थी। फिर वह सिलसिला चालू हुआ तो पुरुष ने उसकी ज़िन्दगी के बारे में जानना चाहा था।

इसके बाद वे पत्रों में ही एक-दूसरे को टटोलते हुए बेहद चौकन्ने होकर एक-दूसरे की तरफ़ बढ़ने लगे थे।

उन्होंने एक जालियोंदार पर्दा अपने बीच में लटका कर अपने को निर्वसन करना शुरू कर दिया था। ऐसा करने में उन्हें एक-दूसरे के कुछेक बेहद ख़ूबसूरत हिस्से दीख गये थे। फिर औरत ने अपने वर्षों की संख्या बताई थी और पुरुष ने अपने भीतर खुदे हुए एक भयानक खन्दक की बात उसे बतायी थी। फिर पत्रों-पत्रों ही में वे एक-दूसरे के साथ मुब्तिला होते गये। उस सारे क़िस्से के सबूत पुरुष के भीतर आत्मविश्वास के रूप में होंगे। यानी पचास प्रतिशत रिस्क तो था ही। पर यह रिस्क औरत को भयानक के साथ उतने ही भयानक तौर से सम्मोहक भी लग रहा था। कुछ देर तक डरते रहने के बाद स्त्री की इच्छा होने लगी थी कि पुरुष कुछ करे। पर वह खिड़की पर हाथ टेके बाहर के नीम-अँधेरे में लिपटे हुए दृश्यों को देखता रहा था। चुपचाप सिगरेट पीता। उससे निरपेक्ष।

होटल के लिए जाने वाली सड़क पर चलते हुए औरत ने मुँह बिचका

कर अपना आभिजात्य प्रकट किया। "कितनी गन्दी जगह है। दिल्ली का नर्क। मैं यहाँ बाइस साल के बाद आ रही हूँ। तुमसे कहा था कि नई दिल्ली के किसी होटल में ठहरना!"

"मैं इस शहर में पहली बार आ रहा हूँ," सिगरेट पीते हुए पुरुष ने मशीनी ढंग से कहा।

होटल की सीढ़ियाँ चढ़ने तक एक बैरे ने उन्हें ग़ौर से घूरा। "ये बाई कौन हैं?" उसने सन्देह से पूछा।

पुरुष ने बुरी तरह एम्बरेस्ड महसूस करते हुए अपने कन्धे झटके। "मेरी मित्र हैं···थोड़ी देर बाद वापस चली जायेंगी।" आख़िरी जुमला उसने काफ़ी धीमे स्वर में कहा।

कमरे का ताला खोलकर वह कॉफ़ी और सैण्डविच का आर्डर देने के लिए वापस चला गया। लौटकर आया तो औरत उसके द्वारा दोपहर को लायी गयी किताबों को देख रही थी। वह प्रसन्न हुआ कि उसकी इमेज अच्छी बन रही होगी।

"आपने काफ़्का को पढ़ा है?" उसने उत्साह से कहा, "यहाँ उसकी सिर्फ़ दो किताबें मिलीं। सबसे ज़रूरी 'काफ़्का की डायरी' मिली ही नहीं।"

"मैंने नहीं पढ़ा। पढ़ने के लिए वक़्त ही नहीं मिलता।"

"कामू को! मुझे कामू और सार्त्र में कामू ज़्यादा पसन्द है। आपको कामू की 'द आउट-साइडर' और 'द फाल' ज़रूर पढ़ना चाहिए। यों सार्त्र भी लेखन में काफ़ी आब्जेक्टिव है पर कहीं-कहीं वह भावुक हो जाता है!"

औरत किताबों को उसी तरह बेतरतीब छोड़कर दीवार के सहारे टिक कर बैठ गयी और आँखें मूँद लीं।

"आप थक गयी हैं?" पुरुष ने पूछा।

"मैं जल्दी थक जाती हूँ। आप क्या कह रहे थे? मुझे नींद आ रही है।" औरत तकिए पर सिर रखकर सोने की कोशिश करने लगी। पुरुष ने बिस्तर पर फैली हुई किताबों को समेटा और रैक में सजा दिया। फिर सावधानी से औरत को कम्बल उढ़ा दिया।

कुछ देर के बाद औरत ने आँखें खोलीं तो पुरुष सिगरेट पीता हुआ चिट्ठियाँ लिख रहा था। दरअसल इस बीच वह सोयी नहीं थी। आँखें मूँदे हुए इन्तज़ार कर रही थी।

"मैं बीच-बीच में दस-पन्द्रह मिनट की झपकी ले लेती हूँ।" उसकी तरफ़ एकटक देखती हुई वह मुसकरायी।

"अच्छा! आप चाहें तो थोड़ा-सा और सो लें। तब तक मैं कुछ

चिट्ठियाँ और लिख डालूँ !"

"पैन कैसा है ?"

होस्टल में उसने पुरुष को एक पैन दिया था। पुरुष उसी से लिख रहा था। "अच्छा है।"

स्त्री ने एकदम चित्त होकर अपने वक्ष के उभार को स्पष्ट करते हुए आँखों पर कुहनी रख ली। पुरुष ने एक उचटती निगाह से उसकी तरफ़ देखा और फिर चिट्ठियाँ लिखने लगा।

बैरे की आहट से वह उठकर बैठ गयी। टेबिल पर कॉफ़ी रखते हुए बैरे ने दरियाफ़्त किया, "मेमसाहब रात को यहीं रुकेंगी ?"

"नहीं भाई, चली जायेंगी, "पुरुष ने गम्भीरता से कहा।

"मेरा घर यहीं है। चली जाऊँगी। तुम्हारे होटल का दरवाज़ा बन्द हो रहा हो तो अभी चली जाऊँ !"

"ही बिहेव्ड लाइक एन ईडियट," बैरा गया तो पुरुष ने माफ़ी माँगने के अन्दाज़ में कहा।

"ग़लती बैरा की नहीं है। यह जगह ऐसी है। यहाँ के आदमी लड़की-लोग को हौआ समझते हैं। दे आर नाट यूज़्ड टु सच थिंग्स।" औरत ने कोफ़्त से कहा। वह हताश दिख रही थी। उसे पुरुष पसन्द आ रहा था। उसके साथ बन्द कमरे के एकान्त में रहकर वह अपने चिर-प्रतीक्षित रोमांस से होकर गुज़रना चाहती थी। वह पहला पुरुष था जिससे उसे किसी क़िस्म की दहशत नहीं हो रही थी। पुरुष सिर्फ़ झेंपा हुआ दिख रहा था। दरअसल अभी तक वह किसी नतीजे पर नहीं पहुँचा था। उसके साथ एकान्त, सुरक्षित एकान्त में रहना उसे आकर्षक ज़रूर लगता था पर उसके लिए वह उतना उतावला या बेसब्र नहीं दिखता था।

"मैं इस शहर में पहली बार आ रहा हूँ," पुरुष ने दुहराया। पर वह उतना नर्वस नहीं था जितना औरत के हिसाब से उसे होना चाहिए था।

"मैंने आपको पहले ही लिख दिया था। नई दिल्ली में ठहरियेगा।"

बैरा आकर कप-प्लेटें उठा कर ले गया। पुरुष बिस्तर के नीचे से जूते निकाल कर जुराबें पहनने लगा। औरत ने बिस्तर से उठकर अपने कपड़ों को दुरुस्त किया। "चला जाये !" पुरुष ने कहा। उसने अपने सिर पर हाथ फेरा। उसके सिर के बीच के काफ़ी बाल ग़ायब थे। जब वह पढ़ता था तब उसके बाल बहुत खूबसूरत थे। वह अपने को 'हीरो' समझता था। पर तब वह पैसे से तंग था। इधर उसने पैसा तो काफ़ी कमा लिया पर बच्चों, हर घड़ी लड़ने को तैयार रहने वाली पत्नी और गृहस्थी की सैकड़ों झंझटों ने उसके सारे शौक़ खत्म कर दिये। साथ ही दिन पर दिन उसका

सिर बालों से खाली होता गया। इससे वह सहसा सादगी-पसन्द इन्टैलेक्चुअल बन गया। अपने लिए यह बाना उसे अच्छा और सुलभ लगा था। उसकी कोशिश रहती कि वह अधिक-से-अधिक गम्भीर दिखे। उसका ख़याल था कि दुनिया के तमाम मसलों के प्रति उसकी अप्रोच एकदम नयी और नायाब है। उसके पास हर समस्या के विश्लेषण और समाधान का अपना निजी तरीक़ा था। साहित्य, राजनीति या दर्शन में उसका खासा दखल था। और वह कहीं भी इन पर अधिकार से बोल लेता था। पर औरत को उसकी गम्भीरता से ज़्यादा उसकी सिधाई पसन्द आ रही थी जिसके कारण वह उसे इतना 'हानिरहित' लग रहा था कि उसे खीझ होने लगी थी।

टैक्सी पुल के नीचे से गुज़र रही थी। पुरुष ने कहा, "मैं परसों चला जाऊँगा।"

"परसों शनिवार है।" औरत ने अपने चेहरे को काफ़ी संजीदा बना लिया। पर पुरुष ने उधर नहीं देखा।

"दिल्ली में ट्रैफ़िक बहुत है। यहाँ का हर आदमी दूसरे को बाई-पास करना चाहता है। है न?"

उत्तर के लिए उसने औरत की तरफ़ देखा तो वह उसे उदासी भरी आँखों से एकटक देख रही थी।

"सुनो, इतवार तक रुक जाओ!" औरत ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। पुरुष को जैसे उसका इन्तज़ार था। उसने उसके हाथ को अपने हाथों में दबोच लिया। दबाया, होंठों से लगाया, फिर छोड़ दिया। औरत ने उसके हाथ को अपनी हथेलियों में ले लिया। पुरुष को अचरज हो रहा था। औरत की हथेलियाँ बेहद मुलायम थीं। औरत ने उसके हाथ को होंठों से लगाया...पुरुष का हाथ उसके शरीर पर घूमने लगा। पुरुष को उसके शरीर में खजुराहो की ठोस प्रतिमाएँ साकार महसूस हो रही थीं।

"आपके हाथ बेहद मुलायम हैं। इतने मुलायम हाथ आज तक नहीं देखे।" पुरुष उसके पुष्ट शरीर के बारे में भी कुछ कहना चाहता था। पर उसके बग़ैर कहे ही स्त्री ने उसकी आँखों में पढ़ लिया कि वह क्या नहीं कह पा रहा। उसे सन्तोष था कि पुरुष को पता चल गया है कि उम्र के बावजूद उसका शरीर कितना कसावदार है। पुरुष की आँखों में फैला हुआ आश्चर्य उसे सुख दे रहा था।

"मैं सैन्टीमैन्टल बहुत हूँ।"

"सैन्टीमैन्टल लोगों के हाथ मुलायम होते हैं?"

"हाँ।"

"तो मेरे हाथ क्यों इतने मुलायम नहीं हैं?"

"तुम मेरे जितने सैन्टीमैन्टल नहीं हो।" औरत ने मस्ती में आकर कहा और पुरुष के हाथ को अपने हाथों में लेकर खेलने लगी। पुरुष का अपने बारे में खयाल था कि वह काफ़ी सैन्टीमैन्टल है। वह उदास हो गया। औरत को उसकी उदासी उत्तेजक लग रही थी। उसे और भी उत्तेजित करने की गरज़ से वह महीन-महीन हँसने लगी। पुरुष ने धीरे-से उसके गले में हाथ डालकर उसे अपनी तरफ़ खींचा। उसे औरत के चेहरे की खाल काफ़ी ढीली, खुरदुरी और गिजगिजी लगी। वह उसे सहसा छोड़कर सीधा तनकर बैठ गया। उकताता हुआ। उसे लग रहा था जैसे मितली आ रही हो।

होस्टल आने पर वह औरत को छोड़ने गया तो औरत गेट के बीचों-बीच खड़ी हो गयी, "इस वक़्त गेट के भीतर आने की इजाज़त पुरुषों को नहीं है," औरत शरारत से हँसी।

"अच्छा, अच्छा," पुरुष ने सिगरेट सुलगा ली। फाटक के बीचोंबीच खड़ी औरत और बाहर खड़ा हुआ वह। और चारों तरफ़ सुनसान। एकान्त। वह दृश्य पुरुष को फ़िल्मों जैसा रूमानी लग रहा था।

"मैं इसी टैक्सी से वापस चला जाता हूँ," उसने कहा।

२८ नवम्बर : रात ११ बजे

उससे मिल लिया। वह बहुत सीधी, चतुर और गम्भीर लगी। एक बात सोते वक़्त याद रही है। इसने अपनी ज़िन्दगी में बहुत भुगता है। उन हालातों में कोई दूसरी औरत आत्महत्या कर लेती या पागल हो जाती। वह सिर्फ़ एबनार्मल है। अपनी सारी सहानुभूति और मानवीयता के बावजूद मैं उसके लिए अधिक नहीं कर सकता। यहाँ तक कि उसे दुबारा चूम भी नहीं सकता। अभी भी जैसे मितली आ रही है। लगा था जैसे किसी मरे हुए साँप की चमड़ी को मुँह में भर लिया हो। उस वक़्त जब वह मेरे हाथ से खेल रही थी...मैं अपनी मितली को भुलाने के लिए शीला की याद करता रहा था। उसके अनिंद्य सौन्दर्य, समर्पण और विदा के वक़्त उसकी रोती हुई बड़ी-बड़ी आँखों की याद करता रहा था। उस क्षण जब उसके पीले गुलाब जैसे चेहरे को होठों से छुआ तब लगा था कि दुनिया में मेरे लिए उससे बड़ा सुख नहीं था। मैंने उसे एक फूल के नाम से पुकारना शुरू कर दिया था—सूरजमुखी।

वह गेट पर खड़ी मिली। पुरुष का इन्तज़ार करती हुई। "यू कैन्ट मी वेटिंग!" पुरुष को देखते ही औरत उसके क़रीब चली आयी। उसका उतरा

हुआ चेहरा देखते ही उसका उत्साह बुझ गया—"तुमने आधा घंटे इन्तज़ार कराया।" वह गम्भीर थी।

उसकी गम्भीरता को पुरुष ने गम्भीरता से लिया—"आधा घंटा?" अपने आप में खोया हुआ वह बुदबुदाया।

"मेरी दोस्त कह रही थी कि तू इतनी बेताबी से बार-बार गेट की तरफ़ क्यों जाती है और लौट आती है!" औरत ने कहा।

"मेरा उपन्यास पढ़ लिया!" कल औरत ने पुरुष को अपने उपन्यास की पाण्डुलिपि दी थी।

"हूँ, ये लो!" पुरुष ने कहा। कपड़े में कागज़ों को सहेजते वक़्त औरत ने सोचा था।

यदि सचमुच उसने इतनी जल्दी उसके उपन्यास को पढ़ डाला तो पुरुष निस्सन्देह काफ़ी उदार है।

"मैं इसे दो वर्ष में पूरा कर पायी थी?"

"मैं इसे ख़तम करने के बाद सोया था। सिगरेट पीने की इजाज़त चाहता हूँ।"

पुरुष ने जिस रोमांटिक भाव से उससे इजाज़त माँगी उससे वह खुश हो गयी। उस तरह से मुस्कराता हुआ पुरुष उसे बच्चे की तरह निश्छल लगता था। एक पत्र में उसने कहा भी था कि वह उस जैसा बच्चा चाहती है। इस वक़्त उसे फिर अपने भीतर वैसी ही इच्छा का अहसास हुआ। वह पुरुष से एक बच्चा चाहती थी—उसी जैसा। वह पुरुष को अपने बच्चे के रूप में चाहती थी।

"तुम जब तक कॉफ़ी पियो, मैं अभी आती हूँ। पाँच मिनट के भीतर।"

गलियारे की नीम-रोशनी में चलती हुई स्त्री के अंग उसे उसके क़द के अनुपात में काफ़ी बेडौल लगे। पुरुष ने विज़िटर्स रूम में बैठे हुए दूसरे जोड़ों की तरफ़ देखा। ये लोग उसे स्त्री का क्या समझते होंगे। मित्र या प्रेमी? यह सोचते ही उसके शरीर में झुरझुरी दौड़ गयी। वह नहीं चाहता था कि कोई उसे उसका प्रेमी समझ ले। वैसी स्त्री का प्रेमी होना उसे काफ़ी हास्यास्पद लगा था। वह नहीं चाहता था कि लोग उसे इतना बेवकूफ़ समझ लें। हालाँकि वह स्त्री के प्रति किसी न किसी तरह की आकांक्षा से भरा हुआ था। उसके साथ बात करना, घूमना उसे अच्छा लगता था।

औरत लौट आयी। उसने जुराबों के ऊपर सफ़ेद जूतियाँ पहन रखी थीं जिससे उसके पैर मर्दों जैसे लग रहे थे। उसने कन्धों पर शाल ओढ़ रखा था। उसका शरीर काफ़ी भरा और गठा दीख रहा था—मर्दाना।

कॉफ़ी के गिलास को टेबल पर रखकर पुरुष उठ खड़ा हुआ।

"अब ?"

"कहीं भी। तुम बताओ।" औरत पूरी तौर से उसी के ऊपर निर्भर हो जाना चाहती थी।

"आप बताइये। मैं इस शहर के लिए अजनबी हूं।"

"मैं उन लड़कियों में से नहीं, जिन्हें घूमने का शौक़ होता है। होस्टल से आफ़िस। आफ़िस से होस्टल। मैं ज़रा सीरियस क़िस्म की लड़की हूँ।"

"कनाट प्लेस।" पुरुष को जिस जगह का नाम याद आया कह दिया।

"सुधीर रेस्तराँ में चाय पियेंगे। मैं पन्द्रह साल से उधर नहीं गयी। इंग्लैंड जाने से पहले भाई के साथ एक बार वहाँ गयी थी।"

टैक्सी में पुरुष ने औरत के हाथ का अपने हाथ में लेकर दबाना शुरू कर दिया। उसे ख़याल आ रहा था कि कल उसने उसे प्यार किया था। वह नहीं चाहता था कि अब कोई ऐसी बाध्यता उसके आगे आये। अतः वह सिर्फ़ उसके हाथ को मसलता रहा। स्त्री उसे चतुरता से भाँप रही थी। उसे अहसास था कि पुरुष उससे दस वर्ष छोटा है और कल उसने उसे प्यार किया था। बीस वर्षों से किसी पुरुष ने उसे प्यार नहीं किया था। जब वह इंग्लैंड में थी और युवा थी तब उसकी एक बदचलन मित्र ने उसे एक पाकिस्तानी के साथ फँसा देना चाहा था। पाकिस्तानी बातचीत के दौरान उसे लगातार घूरता था और एकान्त पाने पर उसकी आँखों और होंठों की तारीफ़ करता। पर तब वह 'आदमी' से बहुत डरती थी। उसके भीतर ग्रन्थि बन गयी थी कि हर आदमी क्रूर, मतलबी और शिकारी होता है। उन दिनों वह काफ़ी ख़ूबसूरत थी और अपने भीतर की 'भारतीय नारीत्व' की गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए सन्नद्ध रहती थी। और फिर कुछ अर्से के बाद ढलती उम्र के हर वर्ष के साथ उसे एक सीधे-साधे पुरुष की प्रतीक्षा थी जो उसे सुरक्षा, घर और बच्चे दे। उसे अफ़सोस हो रहा था कि कोई ऐसा पुरुष उसे पन्द्रह-सोलह वर्ष पहले नहीं मिला। उसे अपनी उम्र और ढलती हुई देह का अहसास था। वह उसे नाराज़ नहीं करना चाहती थी। उसे अहसास था कि कुछ दिनों, महीनों या वर्षों के बाद वह प्रौढ़ता की स्थिति में पहुँच जायेगी और तब अपने आप उसके भीतर की सारी युवा-आकांक्षाएँ अपना दम तोड़ देंगी। वह स्थिति किस क़दर उबाऊ और भयानक होगी !

"यह शहर मुझे क़तई पसन्द नहीं आ रहा," पुरुष को उस वक़्त रह-रह कर अपनी सूरजमुखी याद आ रही थी। अपने से सटकर बैठी हुई औरत उसे उसकी 'एन्टीथीसिस' लग रही थी। पुरुष ने सिगरेट सुलगायी और एक हाथ से स्त्री की हथेली को धीरे-धीरे मसलते हुए हल्के-हल्के कश

खींचने लगा।

२९ नवम्बर : रात ११.३०

मैं भयानक तौर से ऊब रहा हूँ। इस कमरे से, शहर से, अपने आप से। अपने आस-पास का सब कुछ कितना व्यर्थ और आक्रामक लगता है। क्या है यह मेरे भीतर उसके लिए—प्रेम, घृणा, करुणा...या क्या? तय है कि उसे चाह सकना मेरे वश के बाहर है। पर मैं उसे निराश नहीं कर सकता। शी हैज़ सफ़र्ड सो टैरीबिली! रात को जन्तर-मन्तर के पास घूमते वक़्त उसने कहा था कि उसका एक दोस्त उससे शादी करना चाहता था पर उसने इन्कार कर दिया। मुझे हैरत हुई थी। उसके दोस्त पर मुझे तरस आया था। अपने चित्र में वह कितनी मोहक लगती थी! सुडौल देह, सुते हुए नक्श और बड़ी-बड़ी स्वप्निल आँखें। यह चित्र तब का है जब वह लन्दन यूनिवर्सिटी में पढ़ती थी। मैं उस वक़्त हाई स्कूल में रहा होऊँगा। मेरे साथ बार-बार एकान्त चाहने से उसका क्या मतलब है? वह कहती थी कि दुनिया में उसे आज तक ऐसा पुरुष नहीं दिखा जिसने उसे ठगने की कोशिश न की हो। वह मेरा विश्वास करती है। मैं उसका पुरुष हूँ। हर मैन!

मैं इस शहर से ऊब रहा हूँ। उसी की वजह से। शायद! पर इस शहर की कल्पना उसके बिना असम्भव लगती है। यह बात भूलती नहीं कि मैंने उसे चूमा था। लगा था, जैसे एक साथ कई मक्खियाँ निगल ली हों। पर उसने अपने जीवन में बहुत सहा है। दुख आदमी को भीतर-बाहर से कितना कुरूप कर देता है! मेरे भीतर की उस अनन्त करुणा का क्या हुआ? उस मानवीयता का? मैं ढोंग कर रहा था। मैं हिपोक्रेट हो रहा था।

वह विज़िटर्स-रूम के बरामदे में इन्तज़ार कर रही थी। पुरुष को देखते ही वह उसके पास चली आयी। "तुम फिर लेट हो गये।" उसने साधिकार पूछा।

"हूँ!" होठों में सिगरेट दबाकर पुरुष ने अपने कोट का बटन छुआ। वह सहज था और आश्वस्त कि बाल्डनैस के बावजूद औरत उसे पसन्द करती है। वह अपने को खूब स्वस्थ महसूस कर रहा था। उसे विश्वास था कि अब भी वह थोड़ा बहुत स्पोर्टमैन दिखता है। यूनीवर्सिटी के दिनों में वह बैडमिण्टन का बेहतरीन खिलाड़ी था। खिलाड़ी होने के साथ-साथ वह गुड सेकेण्ड क्लास स्टूडेंट भी था। वह खूबसूरत था हालाँकि क्लास

की लड़कियों के साथ उसकी दोस्ती बातचीत की हद से आगे नहीं बढ़ सकी। वह आई० ए० एस० होना चाहता था जैसे कि उसके कई परिचित लड़के हो गये थे। पर वह उस परीक्षा में बैठ ही नहीं पाया। "मैं सात बजे से तुम्हार इन्तज़ार कर रही हूँ।" औरत ने इठलाकर शिकायत की।

"मैं सात बजे आ सकता था," पुरुष ने कहा—"पर मैंने सोचा कि उस वक़्त ठीक से अँधेरा नहीं होता।"

"तुम्हें वक़्त पर आना चाहिए। तुम्हें पता है, मुझसे इन्तज़ार नहीं होता।"

पुरुष 'स्टैण्ड एट ईज़' की मुद्रा में खड़ा हो गया। "अच्छा-अच्छा," उसने बेफ़िक्री से कहा। उसे अच्छा लग रहा था कि औरत ने उसका बेक़रार होकर इन्तज़ार किया। "उधर बैठते हैं।" औरत ने इशारा किया।

वह दूसरे विज़िटर्स-रूम का बरामदा था। मेहराबों पर टाट की चिकें पड़ी हुई थीं। एक खम्भे के पास एक आदमी घिसा हुआ सलेटी रंग का सूट पहने अपनी 'लड़की' का इन्तज़ार कर रहा था। वह काफ़ी सहमा हुआ दीख रहा था।

"तुम यहीं बैठो। मैंने तुम्हारे लिए खाना बनाया है!"

"खाना? मुझे भूख नहीं है!" पुरुष ने परेशानी प्रकट की।

"तुम ज़रूर भूखे होगे! यहाँ के होटलों में एकदम रद्दी खाना मिलता है।"

"सचमुच, क़तई भूख नहीं है!" पुरुष ने दुहराया।

स्त्री बिना जवाब दिए चली गयी। थोड़ी देर बाद लौटी तो उसके हाथों में टिफ़िन और प्लेटें थीं।

"बहुत सामान ले आयीं! आप भी लीजिये।" पुरुष ने कहा।

"ये रायता है। कश्मीरी दाल। दही तुम्हारे लिए सुबह जमाया था।"

"दही नुक़सान करेगा। मुझे ज़ुकाम है।"

"नहीं करेगा। शुरू करो।" पुरुष खाने लगा।

"मेरी फ्रेण्ड तुम्हारे बारे में पूछ रही थी!" और बताने लगी।

"हूँ!"

"मैंने उसे बताया कि वह कोट और साड़ी आपने मुझे भेंट की है।" पुरुष से आँखें मिलते ही औरत ने आँखें झुका लीं।

"यह क्यों बता दिया? अब और नहीं खाया जाता।"

"अभी तुमने खाया ही क्या है?"

"अब भूख नहीं है।" पुरुष ने पानी का गिलास उठा लिया।

"दही तो लिया ही नहीं।"

"दही से ज़ुकाम हो जायेगा।"

"नहीं होगा", औरत ने अतिरिक्त आग्रह से कहा—"थोड़े-से चावल के साथ खा डालो।"

पुरुष फिर खाने लगा।

"कॉफ़ी ?" पुरुष खोया हुआ-सा बोला।

"हाँ कॉफ़ी। तुम्हें बात करते-करते यह क्या हो जाता है।"

"क्या ?"

"किसी दूसरी जगह चले जाते हो।"

औरत ने कैनटीन वाले को बुलाकर दो कॉफ़ी का आर्डर दिया, फिर टिफ़न, प्लेटें समेट कर चली गयी। लौटकर आयी तो उसके हाथ में एक बण्डल था।

"कॉफ़ी नहीं आयी अभी तक।"

"जल्दी क्या है।" पुरुष बोला।

इतने में बैरा आता दिखा। इत्मीनान से कप उठा कर वे कॉफ़ी पीने लगे।

"आज बाज़ार गयी तो तुम्हारे लिए ये लेती आयी," औरत ने टेबल पर रखे हुए बण्डल की तरफ़ इशारा किया।

"क्या है इसमें ?" पुरुष इस अहसास से मुक्त नहीं हो पा रहा था कि यहाँ वाले उसे औरत का प्रेमी समझ रहे होंगे।

औरत ने वेनिटी बैग से डायरी निकाल कर कहा—'लो पढ़ो इसे।" और उसके चेहरे पर आँखें गड़ा कर देखने लगी।

पुरुष पढ़ने लगा।

रात ४ बजे : ३० नवम्बर

"मुझे पीस डालो...मुझे तोड़ डालो...मुझे पी कर खत्म कर दो। बताओ मैं तुम्हारी हूँ न ? मैं अब और जीना नहीं चाहती...मैं तुम्हारे हाथों मरना चाहती हूँ...।"

सहसा औरत ने टेबल के नीचे पुरुष के पैर को अपने पैर से ठोकर मारी।

"आप डायरी रोज़ लिखती हैं ?" पुरुष ने ठंडे लहजे से पूछा।

"उहूँ !" औरत सहसा बुझ गयी। "रोज़ लिखने की फ़ुर्सत किसे है !"

"मैं चाहता था, आप रोज़ डायरी भरें। पूरी हो चुकने के बाद मेरे पास भेज दें।"

"मेरा तमाशा बनाने के लिए ?" औरत का स्वर तल्ख़ हो आया।

"मेरे बारे में अब भी यही ख़याल है?" पुरुष ने कहा और उदास होगया।

औरत पछतावे और चौकन्नेपन से भर गई। पिछले दो दिनों से पुरुष उसके साथ उदार रहा था। होटलों और टैक्सियों के बिल उसी ने भरे थे। इसके अलावा उसने औरत के लिए एक कोट खरीद दिया था जिसका ज़िक्र उसने अपनी सहेलियों और स्टाफ़ के बीच बड़े गर्व से 'एक मित्र ने भेंट किया है' कह कर किया था। औरत ने उसके लिए एक पूरी आस्तीन का स्वेटर खरीदने की बात कही तो पुरुष ने हठपूर्वक इंकार कर दिया था। संक्षेप में, वह पूरी तरह से एग्रीएबिल था। अठारह वर्षों के लम्बे और हताश इन्तज़ार के बाद उसने उसे 'पुरुष का स्पर्श' दिया था—उसे चूमा था। उसे प्यार किया था। उतना ही जितना उसने चाहा था। कहीं भी किसी तरह का आक्रमण नहीं। एक भी जगह उसे नहीं लगा कि पुरुष स्वार्थी है, या उसे ठगना चाहता है।

"आई एम रियली वैरी सारी।" औरत ने कहा और पुरुष का चेहरा देखने लगी।

"ये क्या है !" पुरुष ने आश्चर्य प्रकट किया। फिर सिगरेट के कश खींचता निरपेक्ष हो गया।

"चला जाये !" कुछ देर बाद पुरुष ने कहा।

"कहाँ चलोगे ?" औरत वैसी ही उसका चेहरा देखती बैठी रही।

"मेरे होटल तो चला नहीं जा सकता। वाहियात जगह है।"

"तुम्हें पहले ही लिखा था कि किसी स्टैण्डर्ड होटल में ठहरना। औरत ने तल्ख़ी से कहा।

"तुम नई दिल्ली के किसी होटल में ठहर सकते थे," कुछ देर बाद औरत ने फिर कहा।

"मैं इस शहर में पहली बार आया हूँ !" पुरुष ने सफ़ाई दी।

वे टहलते हुए सड़क के फ़ुटपाथ पर आ गये।

"इस होस्टल का वातावरण बहुत खराब है। कई लड़कियाँ रात-रात भर ग़ायब रहती हैं। उनकी वजह से सारा होस्टल बदनाम हो रहा है।"

"लड़कियाँ ?" पुरुष सोच रहा था कि यहाँ की सारी औरतें लड़कियाँ हैं। पहले दिन विज़िटर्स-रूम में दिखने वाली एक कुटनी जैसी बुढ़िया भी लड़की कही जायेगी। हो सकता है कि वह भी कभी रात-भर के लिए ग़ायब हो जाती हो। यह ख़याल पुरुष को ख़ासा दिलचस्प लगा।

"हाँ, कल सण्डे है। कल कुतुब चलेंगे। सारे दिन पिकनिक मनायेंगे। मैं अभी तक तुम्हें ठीक से अटैण्ड नहीं कर सकी।"

"मुझे घर की चिन्ता सता रही है। घर से निकले हुए आज सातवाँ रोज़ है। इससे पहले मैं आगरा और जयपुर गया था।"

"तुम्हारे बड़े बच्चे के लिए एक स्वेटर खरीदना है।"

"चलना कहाँ है ?"

"कहीं भी। कहीं एकान्त में बैठकर बातें करेंगे।"

"बातें ?" पुरुष ने कहा और खो गया।

"हाँ बातें।" औरत मटक कर बोली—"तुम्हारे साथ और किया ही क्या जा सकता है !" और वह शरारत से पुरुष को चेहरा देखने लगी।

"फ़ॉर इन्सटान्स ?" पुरुष ने निरपेक्ष भाव से औरत की तरफ़ देख कर पूछ लिया।

स्त्री ने अपने बालों का स्कार्फ़ गिर जाने दिया—"कल सारा दिन घूमेंगे। किसी एकान्त पार्क में बैठ कर खाना खायेंगे। तुम्हारे साथ अपने नये उपन्यास की थीम डिस्कस करेंगे।"

"आपकी शैली बहुत अच्छी है। एक भी शब्द फ़ालतू नहीं होता।"

स्त्री में उत्साह पैदा नहीं हुआ। "मेरी सहेली कहती थी कि जिनके पास ज़िन्दगी होती है, उन्हें लिखने से क्या लेना-देना। मैं पढ़ क़तई नहीं पाती। तुम्हारी भेजी हुई किताबें ज्यों-की-त्यों रखी हैं। तुमने 'आथेलो' पढ़ा है ?"

"बी० ए० में पढ़ा था।"

"फिर से पढ़ना। उसमें इयागो के चरित्र को ग़ौर से पढ़ना। समझ जाओगे कि मेरा भाई कैसा आदमी है।"

"मैं तुम्हारे भाई को एक नज़र देखना चाहता था।"

"वह यहाँ नहीं रहता। एक यूनीवर्सिटी में लैक्चरार लगा हुआ है। जब भी यहाँ आयेगा तब मेरे होस्टल की कुछ लड़कियों से मिलने ज़रूर आयेगा। पिछली बार आया तो मुझे गेट पर मिल गया। 'हलो' कहने के बाद मुझे ग़ौर से देखने लगा। उसे कोफ़्त हो रही थी कि मैं अभी तक उसकी आँखों के सामने ज़िन्दा हूँ।" औरत ने संजीदगी से कहा।

"ताज्जुब है ?"

"वह अपने को बहुत बड़ा जीनियस मानता है। चाहता था कि मैं उसके साथ वर्ड्सवर्थ की बहन डोरोथी की तरह रहूँ। उसे अफ़सोस है कि मैंने उसके लिए कोई बड़ा त्याग नहीं किया।"

वे चौराहा पार कर रहे थे। एक कार तेज़ी से बग़ल से गुज़री। पुरुष ने तेज़ी से औरत को अपनी तरफ खींच लिया। औरत ग़ुस्से से अंधेरे में गुम होती कार की लाल बत्तियाँ देखती रही।

"कहते हैं कि हिन्दुस्तान में तरक़्क़ी आ रही है। और यहाँ के लोग आदमी की ज़िन्दगी की क़ीमत कुत्ते-बिल्ली से ज़्यादा नहीं समझते। एक बार मैं पेरिस में सड़क पर चलती हुई ग़लत साइड में पहुँच गयी। एक कार तेज़ी से आकर मेरे पीछे रुकी। जाने से पहले कार वाले ने मुस्करा कर मुझे सलाम किया। बाद में मेरी टीचर ने बताया कि उसका यह आशय था कि आदमी की ज़िन्दगी सबसे ज्यादा क़ीमती है और इस रूप में वह मुझे इज़्ज़त दे रहा था।"

"अपने देश में आज़ादी ग़लत तरीक़े से आयी। आज़ादी के बाद देश को सही लीडरशिप नहीं मिली।" पुरुष ने कहा।

"यहाँ का हर आदमी डिप्लोमेट है।" औरत ने क़रीब आकर पुरुष का हाथ अपने हाथ में ले लिया। "सुनो, कल तुम्हें ग्यारह बजे आ जाना है। कल कुतुब चलेंगे। कहीं एकान्त में बैठ कर बातें करेंगे। याद रहेगा न ? ग्यारह बजे। मैं गेट पर तैयार मिलूँगी। इन्तज़ार मत कराना। मुझसे इन्तज़ार नहीं होता।"

"ग्यारह बजे ?" पुरुष ने कहा। वह दुविधा में दीख रहा था।

"मैं तुम्हें अपने इंग्लैण्ड-प्रवास के संस्मरण सुनाऊँगी। उस झील के बारे में बताऊँगी, जिसमें डूब कर मेरी शैली ने आत्महत्या की थी।"

"मुझे यह शहर क़तई पसन्द नही आता। हैरत होती है कि आप यहाँ पन्द्रह वर्ष से रह रही हैं!"

"अठारह से!" औरत बेचारगी से मुस्कराई—"बाक़ी उम्र भी यहीं काट देनी है।"

"भयंकर!"

"क्या ?"

"यह शहर। इतना ट्रैफ़िक! उफ़!"

"वी आर यूज्ड टु इट। कल मैं तुम्हें बताऊँगी कि मैंने तुम पर अविश्वास क्यों किया था। तुमने एक पत्र में पूछा था न ?"

"मैं दिल्ली से ऊब रहा हूँ।"

"नो, नो," औरत उसके कन्धे से सटकर चलने लगी।

"अभी तो लगा ही नहीं कि तुम आये हो।"

"टैक्सी ले लें ?" पुरुष ने पूछा।

"कनाट प्लेस चलेंगे।" औरत ने कहा।

पुरुष के चेहरे पर परेशानी की ऊब थी। स्त्री के चेहरे पर थकान और हताशा थी जिसकी वजह से वह अपनी उम्र से कुछ ज़्यादा ही लग रही थी। पुरुष पैंट की जेबों में हाथ दिये उसकी तरफ़ से उदासीन अब तक

होने वाले खर्च का हिसाब लगा रहा था। उसे औरत काफ़ी कंजूस और चतुर लग रही थी। उसने अभी तक एक भी जगह ख़र्च नहीं किया था। पुरुष को यह बात ज़्यादा खटक नहीं रही थी। रुपये-पैसे के मामले में वह उदार था। दोस्तों के बीच पैसा खर्चना उसकी स्नॉबरी में शामिल था। पर सोचना इसलिए पड़ रहा था क्योंकि उसके रुपये ख़त्म हो रहे थे। इसके अलावा उसे लग रहा था कि वह स्त्री को लेकर किसी खास नतीजे पर पहुँच गया है। उसे घर याद आ रहा था। रेस्तराँ से बाहर आते-जाते उसने तय कर डाला कि वह कल नहीं रुकेगा।

उसने टैक्सी वाले को होस्टल का पता बताया और स्त्री से हटकर बैठ गया।

"यह कोट बहुत अच्छा है। इससे पहले मैं दो बार उस दुकान पर गयी पर अपनी नाप का कोट नहीं मिला।"

"अच्छा है ?" पुरुष ने सिगरेट सुलगा ली, "मैं कल चला जाऊँगा।"

"क्यों ? क्यों ?"

"यहाँ मन नहीं लगता।"

"बीवी याद आ रही है ?"

"आपको बताया था कि पहली रात से आज तक हम एक-दूसरे के साथ सहमत नहीं हुए।" पुरुष सामने की तरफ़ देखता हुआ सिगरेट पीता रहा। स्त्री उसका चेहरा पढ़ने की कोशिश करती रही।

"अच्छा ?" स्त्री ने लम्बी उसाँस ली। "जाओ, मैंने अपने का तैयार कर लिया है।"

"आई हैवण्ट हर्ट यू ?" पुरुष ने उसका हाथ अपने हाथ में कस लिया। उसे डर लगा कि अब वह रोना शुरू कर देगी।

"घर पर काम होगा।" स्त्री तटस्थ होने लगी थी।

"सेल्स टैक्स के रिटर्न्स तैयार करना है।"

"तुम्हारा बहुत ख़याल आया करेगा।"

पुरुष को उससे सहानुभूति हो रही थी, पर उसे स्पर्श करने की हिम्मत वह नहीं जुटा पा रहा था।

"तुम्हारे लिए एक पुलओवर खरीदना था," स्त्री ने फिर कहा।

"मेरे पास है।"

"ये स्वेटर तुम्हें नीलिमा ने भेजा था ?"

"हाँ, वह मेरी कहानियाँ पढ़ती थी। अब पता नहीं, कहाँ है। एक अर्से से उसका कोई पत्र नहीं आया।"

"यह पुराना हो गया। मैं नया खरीदकर पार्सल से भेज दूँगी।" औरत

ने ज़िद से कहा।

"अच्छा !"

"एक अफ़सोस यह भी है कि मैं तुम्हें ठीक से अटैण्ड नहीं कर सकी। मुझे आफ़िस से छुट्टी लेनी चाहिए थी। तुमने बुरा माना होगा !"

"नहीं, नहीं," पुरुष मुसकराया और उसके हाथ को अँगुलियों से ठोकने लगा।

"रोक दो, टैक्सी !" औरत ने कहा।

पुरुष स्त्री को गेट तक छोड़ने गया। गेट के भीतर होकर औरत फाटक के सींखचे पकड़कर खड़ी हो गयी। "तुम्हारी बहुत कृतज्ञ हूँ। तुम मेरा शापित जीवन देख चले हो !"

पुरुष एकटक उसकी आँखों में देखने लगा। वह भावुक हो रहा था। थोड़ी कोशिश करता तो रो भी सकता था। उसने तारों पर कसी हुई स्त्री की अँगुलियों को पकड़ लिया।

"गर्मियों में फिर आना !" स्त्री की आँखें तरल होकर चमकने लगीं। पुरुष नहीं चाहता था कि वह रोना शुरू कर दे।

"आऊँगा।"

"पर पहुँचते ही पत्र देना।"

"ज़रूर !"

पुरुष ने सिगरेट सुलगाकर उसकी अँगुलियों को हल्के से दबाया और लौट पड़ा। टैक्सी में बैठकर उसने सींखचे पकड़कर खड़ी औरत को फिर देखा। वह उसकी तरफ़ बजाय प्रेमिका के माँ जैसी ममता से देख रही थी। करुण, दयनीय और असहाय। उसने खिड़की से सिर निकालकर औरत की तरफ़ हाथ हिलाया। औरत बुत की तरह खड़ी रही। टैक्सी चल दी।

कुछ आगे जाकर पुरुष ने फिर मुड़कर गेट की तरफ़ देखा। उसे उम्मीद थी कि औरत अब भी वहाँ खड़ी हुई उसे जाता हुआ देख रही होगी। पर औरत वहाँ नहीं थी। इससे पुरुष को थोड़ी निराशा हुई। उसने सिगरेट से सिगरेट जलाकर टुकड़े को सड़क पार उछालते हुए ड्राइवर से कहा—"फ़तेहपुरी।" और अपने आसपास से पूरी तरह निरपेक्ष होकर अपने घर और बच्चों के बारे में सोचने लगा।

होटल पहुँचकर पुरुष ने औरत द्वारा दिये गए बंडल को खोलकर देखा। उसमें एक टूथ-पेस्ट, टूथ-ब्रश, पियर्स साबुन की टिकिया और एक पीले रंग का रोएँदार तौलिया था। तौलिये के एक किनारे पर औरत का और दूसरे किनारे पर पुरुष का नाम लिखा हुआ था।

खुला हुआ दरवाज़ा

वह इस समय कुछ भी कर रहा हो सकता था।

मसलन वह बिना एक शब्द बोले ज़ीने के किवाड़ खोलकर नीचे की सुनसान सड़क पर जा सकता था और तेज़ी से कदम बढ़ाता हुआ पार्क के अँधेरे में ग़ायब हो सकता था। काफ़ी दूर निकलकर ठंडेपन से सारी घटना पर ग़ौर कर सकता था और सिगरेट के हर कश के साथ राहत महसूस करता हुआ फ़ैसला कर सकता था कि बस यह आखिरी मर्तबा हुआ। इसके बाद अब यहाँ कभी नहीं आयेगा। कभी निनी टकरायेगी तो सारी घटना सुनाकर कह देगा कि अब उनका मिलना ठीक नहीं। कम से कम उसके यहाँ तो बिलकुल नहीं। या चाहता तो वह इसी समय निनी को यह घटना सुनाकर उसे घबड़ाहट में डाल सकता था और सलाह कर सकता था कि अब क्या होना चाहिये। और उस हालत में जैसा कि निश्चित था निनी सिर्फ़ उससे चिपटकर रोने लगती और उसकी भीगी हुई आँखों और काँपते होंठों को देखकर वह खुद भीतर से इस क़दर कमज़ोर होने लगता कि उसे कई बार चूमने के बाद भी वह पाता कि कोई भी फ़ैसला कर सकने का उसका विवेक और भी दूर होता जा रहा है और वह फिर उसे चूमने लगता...। या फिर उस सड़क की ओर खुलने वाली खिड़की के सामने खड़ा होकर सड़क की बत्तियों की तरफ़ देखता हुआ तय करने की कोशिश कर सकता था कि उसे पिछले दरवाज़े से क्यों नहीं जाना चाहिए। क्यों 'सिचुएशन' को फ़ेस करना चाहिए। मगर वह सिर्फ़ दीवार की टेक लेकर खड़ा हुआ था और पा रहा था कि वह सिर्फ़ महसूस और प्रतिक्रिया कर रहा है। उसके ज़ेहन में तमाम बातें धुएँ की तरह भर गई हैं और कम-से-कम उस समय तक जब तक यह धुआँ छँट नहीं जाता और उनकी आकृतियाँ कुछ और साफ़ नहीं होने लगतीं वह कुछ भी निर्णय नहीं ले सकता—वह कुछ तय कर पाने के पहले की एक अनिवार्य प्रक्रिया से गुज़र रहा है।

वह नहीं पहुँचेगा तो अंकल रोज़ की तरह बरांडे में ईज़ीचेयर पर बैठे हुए सिगार पी रहे होंगे। सहन के लान पर पोर्च की बेलों के साये हिल रहे होंगे। उसके जूतों की आहट से वे अपनी मुँदी हुई आँखें खोलकर उसकी तरफ़ एकटक देखते हुए मुस्करायेंगे। या हो सकता है कि वे मुस्करायें बिलकुल नहीं सिर्फ़ घूरते रहें। ऐसा ही होगा। और तब ज़ाहिर है वह बुरी तरह नर्वस होने लगेगा। अंकल की आँखें उस समय दो गहरे खोखलों की तरह चमकने लगेंगी और उनसे ढेर-सी वितृष्णा कीचड़ की तरह उबल-उबलकर उसके चेहरे पर आने लगेगी। तब वह पायेगा कि वह उनकी नज़र को अपने जिस्म के इंच-इंच पर महसूस कर रहा है और एक अजगर के ठंडे शरीर की-सी जकड़न उसे अपनी गिरफ़्त में कसती जा रही है। और उस हालत को बर्दाश्त करते-करते वह भीतर से इतना कमज़ोर हो उठेगा कि अंकल अगर उसे ज़हर भी दे देंगे तो वह इन्कार नहीं कर सकेगा। अंकल के इसी रूप से उसे बेहद दहशत होती है। वर्ना वे भी उसे तमाम दूसरी प्रेमिकाओं के पिताओं की तरह परले सिरे के बेवकूफ़ और दयनीय प्राणी लगते हैं जो बिलकुल नहीं जानते कि उनकी लड़कियाँ एकांत में अपने प्रेमियों के साथ किस तरह से पेश आती हैं। हो सकता है वे चर्चा की शुरुआत मौसम, महँगाई या अपनी बढ़ती हुई उम्र से करें, फिर शहर में होने वाली किसी हड़ताल या राजनैतिक सभा का ज़िक्र करते हुए उसके और निनी के सम्बन्धों पर उतर आयें। अपनी अनुपस्थिति में उसके मौजूद होने के प्रसंग को क़ानून और नैतिकता से जोड़ते हुए अजीब-अजीब सवाल पूछना शुरू कर दें। हालाँकि अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए उसके पास कुछ ठोस तर्क होंगे मगर वह उनकी ठंडी आक्रामकता के सामने अपने को इस तरह निरस्त्र महसूस करने लगेगा कि सारी सिचुएशन को चुप रहकर बर्दाश्त करने के अलावा उसे और कुछ नहीं सूझेगा।

वह दायें पैर को ढीला छोड़कर बायें पर खड़ा हो गया। दरवाज़े से बरांडे के ऊपर वाली छत और दूर-दूर तक फैले मकान दीखते थे, धुन्ध भरी गहरी निस्तब्धता मे डूबे हुए। उसकी अँगुलियों में सिगरेट फँसी हुई थी जो धीमे-धीमे धुआँ छोड़ती हुई सुलग रही थी। वह उस घटना को अपनी चेतना के एक हिस्से की तरह महसूस कर रहा था—उस समय वह बिस्तर पर निनी के बाज़ुओं पर हाथ फेरता हुआ उसके जिस्म की गदराहट को महसूस कर रहा था, तभी खिड़की की सलाखों पर अंकल का चेहरा आ टिका था। निनी उस वक़्त खिड़की की तरफ़ पीठ किये उसकी किसी बात पर धीरे-धीरे हँस रही थी। उस वक़्त भी जब उसका चेहरा सफ़ेद हो उठा होगा। निनी सिर्फ़ हँस रही थी। कुछ देर बाद ही अंकल का चेहरा सलाखों से

हट गया था और वहाँ फिर काला आकाश दीखने लगा था। काफ़ी देर तक वह उनके घिसटकर चलने की आहटें सुनता रहा था। उस वक़्त हवा चल रही थी और हवा की सरसराहट के बीच भी अंकल के चलने की आहट उसके ऊपर हथौड़े की चोटों की तरह पडती रही थी। आहटों के बन्द होते ही वह बिस्तर से उछल कर खड़ा हो गया जैसे साँप पर हाथ पड़ गया हो और दीवार से टिक लम्बी-लम्बी साँसे भरने लगा था। निनी कछ भी न समझती हुई उसकी बदहवासी पर दाँतों में पल्ला दबा कर हँसने लगी थी। फिर उसके सफ़ेद हुए चेहरे को देखकर सकते में आने लगी। उसने कंधे पर झूलती चोटी को पीछे फेंक दिया था, दोनों पैर ज़मीन पर कर लिये थे और शंकित स्वर में बोली थी, "क्या हुआ ? इस तरह वहाँ खड़े-खड़े क्या देख रहे हो ?"

उसने चेहरा घुमाकर निनी की तरफ़ देखा था। मेंटलपीस पर रखे हुए टेबललैम्प का प्रकाश-वृत्त उसके आधे चेहरे और कंधे से होता हुआ फ़र्श पर गिर रहा था। कमरे के ख़ालीपन में निनी का सवाल उसकी आँखों के सामने पेन्डुलम की तरह लटकता रहा था। कुछ देर बाद उसे लगा था सवाल अब भी उसके सामने अड़कर खड़ा है और उसके लिए कोई जवाब देना ज़रूरी हो गया है।

"कुछ नहीं...। खास कुछ नहीं...।"

"फिर क्या कर रहे हो वहाँ खड़े-खड़े ?" सिर के ऊपर दोनों हाथों को मिलाकर निनी ने अपनी अँगुलियाँ तोड़ी थीं। बालों की एक मोटी लट छूटकर उसके गाल पर आ रही थी। उहके चेहरे पर एक अतृप्त-सा उनींदापन छा गया था।

"सुनो निनी। यदि बाई-चांस अंकल को पता लग जाये कि इस वक़्त कभी-कभी मैं तुम्हारे पास आया करता हूँ। मान लो कभी में यहीं होऊँ और वह अपने वक़्त से पहले लौट आयें ?"

"असम्भव...। पापा इस समय कॉफ़ी-हाउस में होते हैं। उनका नियम है। अगर कोई पुराना साथी मिल जाये तो बार में भी हो सकते हैं। इस वक़्त उनका घर होना एकदम नामुमकिन है।"

"समीर का खत आया कोई ?" उसने प्रसंग बदल दिया। वह नहीं चाहता था कि निनी को शक भी हो कि अंकल लौट आये हैं और नीचे उसका इन्तज़ार कर रहे हैं।

"नहीं। मैं भी नहीं चाहती कि उसका कोई खत आये," निनी वितृष्णा से बोली थी, "आई हेट हिम।"

"वह इतना बुरा तो नहीं। तुमने कभी सोचा है यह कब तक चल

सकेगा। तुम्हें उसके साथ अपने सम्बन्ध सुधारने की कोशिश करनी चाहिए...।"

"असम्भव...। आई क्रान्ट टॉलरेट हिम। वह मुझे पत्नी नहीं सिर्फ़ औरत का शरीर समझता है। वन मोस्ट असेंशल कमोडिटी। अगर उसे मुझसे कोई लगाव हो सकता है तो सिर्फ़ इसलिए कि मैं उसके लिए एक ज़रूरत हूँ। ही इज़ ए ब्रूट।" निनी का निचला होंठ तेज़ी से काँपने लगा। फिर उसने अपने को संभाल कर काफ़ी धीमे, सधे स्वर में कहा, "और अब तुम तो हो मेरे लिए। तुमसे मिलने के बाद मेरे वापस लौटने के सारे रास्ते बन्द हो गये। मैं कभी सोचती भी नहीं अब उस सम्भावना पर...।"

उसे निनी का भावुक होना पसन्द नहीं आया। अपने स्वर में तटस्थता लाकर बोला, "लेकिन तुम जानती हो मेरा तुम्हारे पास आना कितना ग़लत है। क़ानूनी तौर से तुम अब भी समीर की पत्नी हो," कहने के साथ ही उसे लगा था निनी ज़रूर उसे कायर समझ रही होगी।

"मैं इन्तज़ार कर रही हूँ कि वह तलाक के लिए सूट फ़ाइल करे। वह जो भी अभियोग लगायेगा मैं चुपचाप मान लूँगी। पर मैं पहल नहीं करना चाहती। पहल मैं करूँगी तो वह मेरी कमज़ोरी समझ जायेगा और अड़कर रह जायेगा। मैं जानती हूँ वह ज़्यादा नहीं रुक सकता। वह बाज़ारू औरतों को ज़्यादा अफ़ोर्ड नहीं कर पायेगा और मुझसे तलाक लेकर फिर शादी करना चाहेगा...।" निनी थोड़ा रुकी—"हालाँकि पापा को इससे तकलीफ़ होगी। मैं जानती हूँ वे मेरा कितना ख़याल रखते हैं।"

"हूँ...?" वह बुत की तरह अपनी जगह पर खड़ा रहा। उसके सामने फिर अंकल का खिड़की की सलाखों पर टिका चेहरा तैर गया।

"सुनो निनी, अगर कभी कुछ ऐसा घट जाये जिससे मैं तुम्हारे पास आने से मजबूर हो जाऊँ तो...तो तुम मुझे ग़लत तो नहीं समझोगी...?"

"ऐसा कुछ नहीं होगा।" अपनी तरफ़ मुस्कराती हुई निनी उसे बेहद निरीह लगी।

"मान लो। फ़ॉर आरगूमेन्ट्स सेक ?"

"तुम कहना क्या चाहते हो ?" निनी की आँखों में बेचैनी झाँकने लगी।

"मान लो अंकल न चाहें।"

"पापा तुम्हें बहुत पसन्द करते हैं। अक्सर तुम्हारी तारीफ़ करते रहते हैं। हाँ, हमारे बारे में इतना ज़रूर वे नहीं जानते।"

"मान लो उन्हें पता चल जाये।" उसे लग रहा था निनी से इस सवाल का ज़वाब लेना ज़रूरी हो गया है।

"तब तो बहुत बुरा होगा। दरअसल मैंने इस सम्भावना पर कभी सोचा ही नहीं।"

"तुम्हारे ख़याल से अंकल मुझे इसी वक़्त घर से निकाल देंगे। तुम्हें मेरे साथ कोई भी सम्बन्ध रखने से मना कर देंगे।"

"मैं सचमुच नहीं सोच पाती क्या करेंगे। वैसे तुम्हारे बारे में उनका खयाल बहुत अच्छा है। किसी पर विश्वास करते रहो और वही ग़लत निकल जाये तो आदमी कितना बौखला जाता है!" निनी सोचती हुई बोली।

खिड़की के बाहर हवा चलनी शुरु हो गई थी। बरसाती के नीचे अँधेरी सीढ़ियों पर उसे फिर अंकल का भ्रम हुआ और वह एकटक उस तरफ़ देखने लगा। काफ़ी गौर से देखने पर पाया कि वहाँ कोई नहीं है—दरअसल वह काफ़ी डर गया है।

"मान लो निनी मैं कभी फ़ैसला कर लूँ कि तुम्हारे पास नहीं आऊँगा...। मान लो मैं अभी ऐसा कोई फ़ैसला कर लूँ?"

बिना पलकें झपकाये निनी कुछ देर तक निःशब्द उसकी तरफ़ देखती रही। फिर घुटनों में सिर देकर सिसकने लगी।

पास जाकर वह निनी के बाल सहलाने लगा। "बात यह है निनी कि हमारे ऐसे सम्बन्ध कब तक चलेंगे? किसी भी समय कोई भी बात पैदा हो सकती है। जैसे अंकल को पता चल जाये...या घर पर मेरी पत्नी को शक हो जाये...।"

"या तुम्हारा ही मन ऊबने लगे।" निनी ने जोड़ दिया।

"इसीलिए मैं चाहता था कि तुम्हारे और समीर के बीच की खाई पट जाये।"

उसे महसूस हुआ वह ढोंग कर रहा है। अब से पहले कभी भी उसने निनी के बारे में ऐसी कोई बात नहीं सोची।

"तुम मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।" निनी ने भीगी आँखें उठाकर उसकी तरफ़ देखा और पैर के नख से फ़र्श को कुरेदने लगी। बचत का रास्ता अब भी खुला हुआ था। वह चाहता तो पिछवाड़े के ज़ीने से उतर कर पार्क के अँधेरे में विलीन हो सकता था। पर उसने पाया था कि वह निनी को उसके हाल पर कभी नहीं छोड़ सकता। निनी को इससे पहले उसने कभी इतना अपरिहार्य नहीं समझा। वह अपने को भावुक नहीं मानता। फिर भी उसे लग रहा था कि निनी की तरफ़ देखता हुआ वह बर्फ़ की तरह पिघलता जा रहा है।

"अच्छा," उसने निनी के गाल थपथपाये, "मेरे जाने का वक़्त हो रहा

है। एक बार मुस्कराओ तो।"

"मुझे तंग करने में क्या मिलता है तुम्हें ?" निनी ने उसकी अँगुलियाँ अपनी आँखों से सटा ली, "कल तो आओगे न ?"

"कल बाहर जा रहा हूँ।"

दरवाज़े पर सिगरेट सुलगाते समय उसने कनखियों से देखा। निनी अलसाई-सी तकिये के सहारे बिस्तर पर औंधी लेट गई थी।

सीढ़ियों पर अँधेरा था। कमरे से पहले गोल खम्भों वाला वरांडा पड़ता था। एक खम्भे से टिक कर सिगरेट पीता हुआ वह कुछ देर तक दिसम्बर के खुले हुए आसमान की तरफ़ देखता रहा था। ज़रा-सी देर में उसने बहुत-सी बातें सोच डाली थीं जो अंकल के सामने पड़ने पर उठ खड़ी हो सकती थीं। पिछवाड़े का दरवाज़ा अब भी उसके लिए खुला हुआ था। वह चाहता तो फिर ऊपर जाकर वहाँ ज़ीने की सीढ़ियाँ उतरकर पार्क के अँधेरे में ग़ायब हो सकता था। उसने तय कर लिया था कि वह सिचुएशन को फ़ेस करेगा। अधिक से अधिक यही तो होगा—क्या होगा ? उसने अपने आपसे सवाल किया और कुछ भी नहीं सोच पाया था कि क्या होगा। बहुत-सी बातें हो सकती थीं कमोवेश सम्भावना के साथ। वह काफ़ी दबे पैरों सीढ़ियाँ उतर कर आया। वह नहीं चाहता था कि उसके आने को कमरे में बैठे हुए अंकल जान लें। वह एक बार और सारी बात पर ठीक से ग़ौर कर लेना चाहता था। वह सिचुएशन को इवेड कर सकता था। पर उसके लिए निनी के सामने होकर गुज़रना पड़ता—कुछ देर के लिए उसकी दृष्टि की परिधि में रह कर अपने जिस्म पर उसकी आँखों को झेलना पड़ता। उसने पाया कि वह निनी के सामने कायर होना पसन्द नहीं कर सकता। 'कम ह्वाट मे' उसने अपने से कहा।

कमरे में अँधेरा था। अंकल ने बत्ती बुझा रखी थी। स्ट्रीट लाइट की धुँधली रोशनी में मेंटलपीस के पास इज़ीचेयर पर बैठे हुए सिगार पी रहे थे। धीमे-धीमे चलता हुआ वह उनके क़रीब आ खड़ा हुआ। उसकी तरफ़ चेहरा घुमाकर अंकल ने एक कश लिया। सिगार का लाल सिरा कुछ देर के लिये चमका भी फिर अंकल प्रकृतिस्थ होने के लिए मुँह के आगे मुट्ठी लगाकर धीरे-धीरे खाँसने लगे। उसे सारा दृश्य बेहद नाटकीय लगा।

"क्या निनी ने सब कुछ जान लिया ?" अंकल ने पूछा।

"नहीं।" अँधेरा उसे राहत दे रहा था। रोशनी होती तो निश्चय ही अंकल के चेहरे की तरफ़ देखता हुआ वह इतना नार्मल नहीं रह सकता था।

"मैं बहुत दिनों से जानता हूँ कि तुम आया करते हो। आज मैंने तुमसे बात कर लेना ज़रूरी समझा।"

वह सोच रहा था निनी ने स्विच ऑफ़ कर दिया होगा और तकिये पर ठुड्डी टेके हुए ख़ाली आँखों से आसमान की तरफ़ देख रही होगी।

"तुम चाहते तो पीछे वाले दरवाज़े से चुपचाप भाग जा सकते थे। ज़ाहिर है मैं तुम्हें वैसा मौक़ा दे रहा था। अगर तुम वहाँ से चले जाते तो मैं तुमसे कुछ भी कहना ज़रूरी न समझता। सिर्फ़ निनी को इतना बता देता कि तुम क्यों चुपचाप भाग गये...।"

"मैं निनी को धोखा नहीं दे सकता," उसने कहा।

अंकल की बढ़ी हुई दाढ़ी, चेहरा सिगार के सिरे के साथ अँधेरे में चमक जाता था और फिर भी वह नहीं समझ पा रहा था इस समय उनकी आँखें कैसी लग रही होंगी। हो सकता है उनमें घृणा ही घृणा हो उसके लिए, हो सकता है दयनीयता हो, जैसी आम प्रेमिकाओं के पिताओं में होती है, खासकर उस समय जब वे कोई इस तरह का 'आफ़ेंस' महसूस कर रहे हों। या हो सकता है उनकी आँखों में प्रशंसा का भाव हो उसकी बोल्डनेस और निनी के प्रति इतना ईमानदार होने के लिए। कमरे का अंधेरा उसे अपने और अंकल के बीच टँगे हुए धुँधले पर्दे की तरह लग रहा था जिसकी वजह से एक-दूसरे के सामने काफ़ी स्पष्ट होते हुए भी अपना बहुत कुछ छिपाये रह सकते थे। उसने पाया कि अँधेरे से मिलने वाली राहत के बावजूद वह अपनी एक हथेली को दूसरी से मसले जा रहा है और पसीना-पसीना हो रहा है। बीच में एक बार बोलते हुए अंकल की आवाज़ कुछ काँपी थी और अपने को प्रकृतिस्थ करने के लिए वे सड़क की तरफ़ देखते हुए खाँसने का बहाना करने लगे थे। उतनी देर की ख़ामोशी ने अंकल के एक काफ़ी कमज़ोर हिस्से को उसके सामने उघाड़ कर रख दिया था। उसे महसूस हुआ कि अंकल भी क़रीब-क़रीब उसी की तरह एक बिलकुल अप्रत्याशित 'सिचुएशन' को बर्दाश्त करने की कोशिश कर रहे हैं और अँधेरा उन्होंने जानबूझ कर कर रखा है।

"तुम्हें पता है निनी मेरी इकलौती सन्तान है और उसकी खुशी के लिए मैंने बहुत-सी कुर्बानियाँ की हैं। समीर से शादी के वक़्त मुझे लगा था यह ठीक नहीं हो रहा क्योंकि मैंने उसकी आदतों के बारे में काफ़ी सुन रखा था...," अंकल ने सिगार का लम्बा कश खींचा, "पर मैं जानता था निनी कितनी भावुक और ज़िद्दी है और मैं चुपचाप उसके रास्ते से हट गया। और अब जो हाल हुआ है वह तुम्हारे सामने है। अब भी मैं चाहता हूँ उसका समीर के साथ मेल हो जाये। सम्भव है वह भी इस बात की ज़रूरत महसूस करने लगती...पर तभी तुम आ गये।"

"मैं खुद निनी को कई मर्तबा समझा चुका हूँ!" वह हकला गया।

उसे लगा था निनी को गुमराह करने की सारी ज़िम्मेदारी अंकल उसी के ऊपर थोपने वाले हैं। वह जानता था कि वह जो कुछ कहेगा अंकल उसका विश्वास नहीं करेंगे। फिर भी अपनी सफ़ाई में कुछ न कुछ कहना उसे ज़रूरी लगा।

"हो सकता है आपने समझाया हो।"

उसे लगा अंकल उसे अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से घूरने लगे हैं। उसने 'आपने' शब्द पर ग़ौर किया। ज़ाहिर था अब अंकल उसे कुछ दूरी पर ले जाकर अपनी पूरी ताक़त से आक्रामक हो उठेंगे। वह नर्वस होने लगा। कुछ देर सन्नाटा रहा।

"आप कहेंगे तो मैं निनी से मिलना एकदम बंद कर दूँगा।" उसने घबराहट में कह दिया।

'फ़ुलिश,' अंकल ने झिड़क दिया, "उससे स्थिति और भी खराब हो जायेगी। एक बात पूछूँ, तुम निनी के लिए क्या कर सकते हो ?"

वह चुपचाप खड़ा हुआ अपने गले का थूक गटकने की कोशिश करने लगा।

"मैं जानता हूँ तुम उसे कितना चाहते हो।"

क्या मतलब हो सकता है अंकल का। वह तेज़ी से सोचने लगा। रुपयों से लेकर निनी से शादी करने तक की बातें उसके दिमाग़ में आईं और उसने पाया कि वह हर बात के लिए एकदम अनिर्णित है।

"क्या सोच रहे हो ?" अंकल ने पूछा।

"मैं जानना चाहूँगा...आप मुझसे क्या चाहते हैं ?" उसने अटक-अटक कर कहा।

"मैं अर्से से जानता हूँ कि तुम मेरी अनुपस्थिति में निनी के पास आया करते हो। मैं तुम्हें काफ़ी पहले रोक सकता था। पर निनी की वजह से नहीं रोका। और अब तुम्हारा एकाएक उससे अलग हो जाना ख़तरनाक हो सकता है यह भी मैं जानता हूँ। मैं जानता हूँ निनी कितने स्ट्रांग सेंटीमेंट्स वाली लड़की है। वह इसे सहन नहीं कर पायेगी। मैं चाहूँगा कि तुम उसके पास बदस्तूर आते रहो। यदि तुम पिछवाड़े के दरवाज़े से भाग जाते तब कोई बात नहीं होती। उस हालत में निनी मान लेती कि तुम सिंसियर नहीं थे। पर वह तुम्हारा विश्वास करती है।...और मुझे भी तुम पर भरोसा है...।"

वह बौखलाया हुआ-सा आँखें फाड़-फाड़कर अंकल के चेहरे की तरफ़ देखता रह गया।

"मैं निनी के स्वभाव को जानता हूँ। तुम उसके पास आते रहो। वह

तुमसे भी बहुत जल्दी ऊब जायेगी...इसके बाद समीर के पास लौट जाने के लिये उसका रास्ता साफ़ हो जायेगा। उसे सुखी बनाने का सिर्फ़ यही एक तरीक़ा है...।" अंकल सोचने के लिए थोड़ा रुके। "और सुनो। अब तुम्हें पिछवाड़े वाले रास्ते से आने की कोई ज़रूरत नहीं। इस घटना का ज़िक्र निनी से मत करना।...तुम कुछ कहोगे ?"

"नहीं।" उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसे कैसा महसूस हो रहा है।

"चाहो तो अब जा सकते हो...। चाहो तो वापस निनी के पास जा सकते हो...।" अंकल बात पूरी करने के साथ उठ खड़े हुए और कारीडोर में पहुँचकर लान पर गिरती फीकी चाँदनी को देखने लगे।

पैन्ट की जेबों में हाथ देकर वह तेज़ी से बाहर आ गया। पता नहीं कितनी देर बाद उसे होश हुआ कि वह सड़क के बीचों-बीच चला जा रहा है। सूँ-सूँ करती हुई एक ट्रक आई तो वह उछल कर एक किनारे आ रहा। लैम्पपोस्टों की बत्तियों के गिर्द खिचे धुन्ध के दायरों को देखकर उसे अख़-बार में पढ़े कहीं बर्फ़ गिरने के समाचार की याद हो आई। और उसने ठंड महसूस करते हुए फिर दोनों हाथों को जेबों में ठूँस लिया। वह चला जा रहा था। चलने के पीछे उसकी इच्छा या निर्णय जैसी कोई चीज़ नहीं थी। उसे लग रहा था सलाख़ों पर अंकल का चेहरा देखने के क्षण से लेकर अब तक वह कुछ दबावों के ख़िलाफ़ सिर्फ़ प्रतिक्रिया करता रहा है। यह महसूस करने पर कि वह अर्से से सिगरेट की तलब को दबाये हुए भागा जा रहा है वह एक पेड़ के नीचे रुक कर खड़ा हो गया। उसने मुड़कर पीछे देखा। काफ़ी दूर धुंध में डूबा हुआ अंकल का बंगला दीख रहा था और उसके खुले हुए दरवाज़ों के काँच चमक रहे थे।

वह दरअसल अभी तक कुछ निर्णय कर सकने की प्रक्रिया से गुज़र रहा है, उसने महसूस किया। पहली बार उसे साफ़-साफ़ लगा कि निनी के साथ इस हद तक इंवाल्व होना कितना ग़लत है।

सिगरेट पीते-पीते उसे सहसा लगा कि उसके ज़ेहन में धुएँ की तरह फैली हुई तमाम बातें एक ठोस फ़ैसले की शक्ल ले चुकी हैं। उसने काफ़ी हल्का महसूस करते हुए सिगरेट के टुकड़े को हवा में उछाल दिया। उसकी आँखों के सामने निनी, समीर और अंकल के चेहरे अपनी अजीब मुद्राओं में तैर गये।

"यह आख़िरी मर्तबा हुआ," उसने अपने से कहा और धीमे-धीमे आश्वस्त भाव से अगले लैम्पपोस्ट से गिरती रोशनी के दायरे की तरफ़ बढ़ने लगा। ●

क्षेपक

ताँगेवाले से सामान भीतर रखने को कहने के बाद पिता की तरफ़ देखता हूँ, तो अपने भीतर एक इंपल्स का एहसास होता है कि उनके पैर छू लूं। और अपने अंदर उस तरह से हो जानेवाले फ़ैसले की विचित्रता पर अचरज करता हुआ मैं उनकी तरफ़ बढ़ जाता हूँ। इसका मतलब होता है कि मैंने उन तमाम कारणों पर विजय पा ली है, जिनके तहत रास्ते में तय किया था कि घर पहुँचने पर उनके पास थोड़ा-सा रुककर दो-एक ज़रूरी सूचनाएँ दूंगा और खिसक जाऊँगा। इसका आशय होता कि मैं अपने वर्तमान की मुश्किलों के लिए अब भी कहीं न कहीं उन्हें ज़िम्मेदार मानता हूँ। पिता के आगे अवज्ञा का प्रदर्शन पहले बदला लेने जैसा सुख देता है, बाद में तल्ख पछतावे से भर देता है। पर ऐसा चल रहा है, अरसे से। अपनी अधिकांश आदतों में वे मुझे सिर्फ़ क्षुब्ध करते हैं। प्रतिक्रिया में मेरे भीतर उन्हें आहत करने की हिंसक भावना जागती है। जब कभी क्षोभ बहुत तीखा होता है, तो तबीयत होने लगती है कि उनके सामने खड़ा होकर सिगरेट पीने लगूं, पर ऐसा हुआ आज तक नहीं। हालाँकि उस हद तक क्षुब्ध कई बार हुआ। शब्दों के अभाव में अवज्ञा ही एक शस्त्र है, जिसे मैं उनके ख़िलाफ़ इस्तेमाल कर सकता हूँ। पिता सावधानी से भाँपते हैं और आश्चर्यजनक फुर्ती से मेरे निर्णयों के रास्ते से हट जाते हैं। विडंबना है कि हम आज तक परिवार के बारे में किसी एक निर्णय पर सहमत नहीं हुए। पहले जब निर्णय लेना पिता के अधीन था, मैं असहमत होता था; अब वे होते हैं।

पिता मेरा नोटिस नहीं ले रहे हैं। हालाँकि वे मेरी उपस्थिति के प्रति सजग हैं और अव्यवस्थित हो रहे हैं। वे टिकटी पर रखी रामायण पर दृष्टि स्थिर किये दीवार से टिककर बैठ गये हैं। मैं तेज़ी से 'सूचनाओं' के बारे में सोचने लगा हूँ। जानता हूँ, जो कुछ कहूँगा, उसके उत्तर में वे संक्षिप्त-

सी 'ठीक है' कहेंगे। विरक्त भाव से लोगों की नीयत और ज़माने में अँधेरगर्दी पर कोई टिप्पणी करेंगे और फिर स्थितप्रज्ञ मुद्रा ओढ़कर रामायण में डूब जायेंगे।

उन्होंने सिर उठाकर मेरी ओर देखा है। काले फ्रेमवाले पुराने चश्मे के पीछे से उनकी आँखें मुझे टटोल रही हैं। उनके चेहरे का कसाव धीरे-धीरे खुल रहा है। मेरी विनम्रता उन्हें आश्वस्त कर रही है। पर अभी भी वे किसी संशय से ग्रस्त हैं। उनका चौकन्नापन आहिस्ता-आहिस्ता काई की तरह फट रहा है। वे पितृवत होने की कोशिश कर रहे हैं। पर हो नहीं सकते। उनकी आदत हो गई है कि मेरे सामने कभी असावधान नहीं होते। बातचीत का सिलसिला शुरू करने के लिए वे कोई प्रश्न खोज रहे हैं। उनका आश्वस्त चेहरा मुझे विचलित कर रहा है। मैं तेज़ी से उनके द्वारा पूछे जा सकनेवाले सवालों और उनके उत्तरों के बारे में सोचने लग जाता हूँ। हो सकता है, कोई अटपटी बात पूछकर वे मेरे छिद्रान्वेषण की कोशिश करें। मेरी सहिष्णुता चुक रही है। मेरे चेहरे पर तनाव फैल रहा है। सोच लिया है, मैं उनकी किसी भी अनधिकार चेष्टा को रेज़िस्ट करूँगा। उन्होंने आश्चर्यजनक तेज़ी से भाँप लिया है। उनकी आँखों के कोनों से झाँकती आत्मीयता पर फिर उदासीनता की पर्त फैल चली है। वे निर्विकार हो गये हैं निरीह और अपरिचित से। वे रामायण पर झुक गये हैं कि यदि मुझे उनसे कुछ नहीं कहना, तो कोई हर्ज नहीं। उनके लिए भी इस वक़्त रामायण पढ़ना कहीं ज़्यादा ज़रूरी है।

ताँगेवाला पीछे खड़ा हुआ है। पिता फुर्ती से आलमारी खोलते हैं। वे ताँगेवाले को हमेशा एक चवन्नी देते हैं—जो कि रेट है, पर इसके पहले मैं ताँगेवाले को एक नोट पकड़ा देता हूँ। पिता को ज़रूर बुरा लगा होगा। पर उनके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। वे रामायण को खोलकर पिछली चौपाई तलाशने लगे हैं। इतनी-सी घटना ने उन्हें असहज कर दिया है। वे फिर मेरी तरफ़ देखते हैं—असहाय और उदासीन। माँ की मौत के बाद तमाम चीज़ों के प्रति उनका यही रुख़ हो गया है।

"स्टेशन पर और कोई सवारी नहीं थी, सो पूरा ताँगा करके आना पड़ा।" मैं सहसा कह जाता हूँ, बिना किसी पूर्व निर्णय के।

"ठीक है।" वे कहते हैं और प्रश्नवाचक मगर कुछ न पूछती मुद्रा में मेरी तरफ़ देखने लगते हैं, जैसे हर बात को मेरे निर्णय पर छोड़ रहे हैं। मुझे एहसास है, घरेलू मामलों में पिता अब अधिक से अधिक मुझे सलाह दे सकते हैं—बाध्य न करनेवाली सलाह, जिसके परिणामों की ज़िम्मेदारी से वे मुक्त होते हैं। उन्होंने खँखारकर गला साफ़ किया है कि यदि मेरे पास

कहने के लिए कुछ नहीं, तो वहाँ व्यर्थ खड़े रहने की क्या ज़रूरत है ! मैं उनकी मटमैली आँखों और चेहरे की झुर्रियों की तरफ़ देखता हुआ अफ़सोस से भरने लगा हूँ। मैं उनके प्रति कर्तव्य-भाव से भर रहा हूँ और निष्कर्ष निकालता हूँ कि उन्हें कभी भी मेरी ओर से कोई तकलीफ़ नहीं होनी चाहिए। मुझे रंज हो रहा है कि मुझे जब-तब उनके खिलाफ़ 'अवज्ञा' का प्रयोग करना पड़ता है। उनकी निरीहता मुझे बर्दाश्त नहीं होती। माँ की मौत के बाद उन्होंने अपने को हर तरफ़ से काट लिया है। हालाँकि जब तक माँ रहीं, वे उनसे बराबर नफ़रत करते रहे...फिर भी उन्हें परिवार और संसार के साथ जोड़नेवाली कड़ी माँ ही थीं। उनके बाद घर के सम्बंध में वे अपने-आपको फ़ालतू और बेगाना महसूस करते हैं। मुझे अपनी अवज्ञा ग़लत या अनैतिक नहीं लगती। मुझे पता है, उनके मन में अभी भी शासन और परिवार के लिए निर्णय लेने की लालसा है। यदि मैं रेज़िस्ट नहीं करूँगा, तो वे फिर मुझे अपने किसी गैर-ज़िम्मेदार मनोरंजन के लिए किसी तबाही के रास्ते पर डाल देंगे और परिणामों के लिए मुझे अकेला छोड़ प्रारब्ध की ओट लेकर अपने को निर्दोष घोषित कर देंगे। मेरे आगे अपनी प्रतिष्ठा, परिवार की परिवरिश और बच्चों के भविष्य की मजबूरियाँ हैं। पिता में अपनी पसंद-नापसंद से ऊपर उठने की क्षमता नहीं। उनके निर्णय हमें लगातार मुसीबतों में डालते रहे हैं। अक्सर मैं डर जाता हूँ कि बच्चों के बारे में कोई ग़लत निर्णय लेने पर वे भी मुझे उसी तरह का अपराधी मानेंगे, जैसे मैं पिता को मानता हूँ...'अवज्ञा' की धार दुतर्फ़ा होती है। एक ओर यह पिता को कुंठित करती है, दूसरी तरफ़ मेरे भीतर के पुत्र-संस्कार की क्रमिक हत्या करती है। कभी-कभी लगता है—मेरे भीतर कोई चीज़ आहिस्ता-आहिस्ता मर रही है और मेरी हथेलियों से किसी शिशु के खून की दुर्गन्ध उठ रही है।

पिता ने फिर खँखारकर गला साफ़ किया है। अब वे गुनगुनाकर कर्म के ऊपर प्रारब्ध की श्रेष्ठता प्रमाणित करनेवाली कोई चौपाई पढ़ेंगे...पर वे नहीं पढ़ते। उनकी निरपेक्षता कुछ और गहरी हो जाती है—"तुम हर बात में अपनी चलाते हो—ठीक ! घर के किसी मामले में मुझसे नहीं पूछते—ठीक ! अपनी परेशानियों के लिए मुझे जिम्मेदार समझते हो—ठीक ! अपने को बहुत क़ाबिल और मुझे बेवकूफ़ समझते हो—ठीक ! पर यह सब प्रारब्ध की वजह से होता है। पर तुम्हें किसी बात में विश्वास नहीं...यहाँ तक कि ईश्वर और धर्म में...नास्तिक हो...पर ठीक है..."

ताँगेवाला जा चुका है। सब तरफ़ सन्नाटा है। मैं नीम के अँधेरे में

डूबी सुनसान सड़क की तरफ़ देखता हुआ पिता की तरफ़ एक क़दम और बढ़ जाता हूँ। मेरे उनके बीच का फ़ासला मुश्किल से दो गज़ रह गया है। उन पर प्रकट हो गया है कि मैं किसलिए रुका हुआ हूँ। मैं महसूस कर रहा हूँ कि अभी भी मैं पूरी तौर से अपने फ़ैसले के साथ नहीं। पर अब इसे बदलना मेरे क़ाबू के बाहर हो चुका है। अच्छा होता कि दरवाज़े से ही रुककर उन्हें दो-एक सूचनाएँ देता और खिसक जाता। पिता की आँखों से संकोच झाँकने लगा है। तो ? उन्होंने मेरी दुविधा को भाँप लिया है। उनका चेहरा सख्त हो रहा है। जैसा तब होता है, जब वे किसी आरोप के उत्तर में 'भाग्य' की ओट लेते हुए अपनी सफाई देते हैं। उस वक्त वे मेरे प्रति नफ़रत और विरोध से भरे होते हैं...इस सख्ती के पीछे उनकी ज़िंदगी भर की असफलताएँ, तिरस्कार और ज़माने की टकराहटों से मिलनेवाली खरोंचें हैं। मुझे पता है, वे सबसे उधिक संवेदनशील कहाँ पर हैं। पिता को पता है, मै सबसे अधिक असहिष्णु कब होता हूँ। माँ की मृत्यु के बाद वे धीरे-धीरे घर के मामलों से विरक्त हो रहे हैं। शुरू में (जब माँ थी) उन्हें तकलीफ़ हुई थी और उन्होंने अपने इस 'हक़' के लिए भयानक संघर्ष किया था। हो सकता है, माँ के बाद उन्हें महसूस हुआ हो कि अपनी पत्नी और बच्चों वाले परिवार के बारे में 'निर्णय' लेने का मेरा ज्यादा हक़ बनता है। यह भी हो सकता है कि माँ के न रहने पर अब वे अपने को असहाय पाते हों। या तमाम चीज़ों की तरह इस लड़ाई को निस्सार पाते हों। बहरहाल अब इस स्थिति को अपनी नियति मानकर वे शांत हैं। उन्होंने पिछले वर्षों में घर की निरंतर सुधरती हुई हालत को देखा है। उन्हें ख़याल आया होगा कि आनेवाले कुछ वर्षों में जब बच्चे सयाने और समझदार हो जायेंगे, तब घर का आर्थिक बोझ कितना बढ़ जायेगा। और अब प्रतिद्वन्द्विता त्यागकर उन्होंने परिवार के मुखिया की सम्मानित भूमिका को स्वीकार कर लिया है, अंततः !

आँखों पर चश्मे को ठीक से जमाकर पिता कोई चौपाई पढ़ने लगे हैं। उनके होंठ धीमे-धीमे हिल रहे हैं। उन्होंने गंभीरता ओढ़ ली है। पिता के संदर्भ में गंभीरता का अर्थ मजबूरी और विरक्ति होता है, जो पराजय और धार्मिक ज्ञान से उपजती है। गंभीरता उनके लिए एक 'पोज़ीशन' होती है—एक अप्रसिद्ध मगर जवाबदेही माँगनेवाली सुविधाजनक और पलायनवादी स्थिति। मुझे याद है, उनकी गंभीरता ने कितनी बार मुझे हतप्रभ और पराजित कर दिया और कितनी बार पिता मुझे मेरे हाल पर, अनिर्णय की भयानक स्थितियों में छोड़कर अपनी हाथी-दाँत की मीनार में बैठकर तटस्थ-भाव से मेरे जूझने का तमाशा देखते रहे। और कितनी बार

हमारा परिवार टूटते-टूटते बचा। मेरे साथ होनेवाले हर टकराव के बाद उनकी गंभीरता में वृद्धि हुई है और मेरे प्रति उनका अंदरूनी विरोध और हिक़ारत बढ़ी है।

बचपन से होश सँभालने तक और बाद में, मैंने उन्हें अपने आगे एक चट्टान की तरह खड़ा पाया है। शुरू में उन्होंने मुझे अपने साँचों में ढालने की कोशिश की थी। वे अपने ख़ब्तों को मेरे ऊपर थोपने की कोशिश करते और अवज्ञा होने पर कड़े दंड देते। पिता के नाम पर जो तसवीर मेरे आगे आ खड़ी होती, वह एक निर्मम और क्रूर आततायी की तसवीर होती। बहुत दिनों बाद समझ आने पर मैंने पाया था कि संस्कार के रूप में मेरे भीतर सिर्फ़ उनके विरोध के बीज पड़े हैं, जो उनकी ग़ैरज़िम्मेदार आदतों से सिंचित होकर उगते जा रहे हैं।

माँ की मौत के बाद भी जब अतीत को तेज़ी से भूल चला हूँ, कुछेक बातें नहीं भूलतीं। जैसे पिता का उनके भाइयों द्वारा छला जाना; उनका अपनी ससुराल के पैसे के दम पर अलग हो जाना; भाइयों के साथ उनकी मुक़दमेबाज़ी और गाली-गलौज; माँ का दर्प कि हम सब उनके बाप के नमक पर पल रहे हैं; पिता की डींग कि वे अपने भाग्य पर आश्रित हैं, किसी के बाप के धन पर नहीं, जो किसी की धौंस बर्दाश्त करें; और पुश्तैनी जायदाद को बेच-बेचकर चलनेवाला घर का खर्च और पिता के अदूरदर्शी और ग़ैरज़िम्मेदार धंधे और उनसे होने वाले मोटे-मोटे घाटे; आये दिन होने वाले माँ के साथ उनके झगड़े और माँ की होने वाली पिटाई। बैठक में सुबह से शाम तक होने वाले चौपड़ और शतरंज के खेल और पिता की 'मन चहेती' बँदरिया जो, सुबह-शाम नियम से आधा सेर दूध पीती। रोज़ की कलह और पिता द्वारा निर्मित स्थिति का सबसे ज़्यादा अभिशाप भोगती हुई निराश्रिता बेज़ुबान विधवा काकी की यातना...

"ग़ल्ला सौ मन हुआ था। पचास मन अपुन को मिला, पचास मन बटयारे को..." मैं उन्हें सूचना देता हूँ, सहसा।

पिता रामायण से सिर उठाते हैं, "पेशकार वाले मकान के आँगन का फ़र्श होना था...? क़ानूनगो वाले मकान का किराया आ गया?"

"फ़र्श बरसात बाद करा देंगे। किराया अभी नहीं मिला। ज्वार बेच दी है।" मैं एक और सूचना देता हूँ और कोट की जेब से रुपये निकालने लगता हूँ। पर वे रुचि नहीं दिखाते।

"ज्वार को कुछ दिनों रोककर बेचना चाहिए था। भाव अच्छा मिल

जाता...'' उँगली से आँखों पर चश्मा ठीक से जमाते हुए पिता जोड़ देते हैं, ''पर ठीक है...।''

''यहाँ किसी का रुपया आया ?'' मैं तीन-चार किरायेदारों के नाम लेता हूँ।

पिता सिर हिलाते हैं, ''एक ट्रक सीमेंट ज़रूर आया था। उसका रुपया हाथ के हाथ दे दिया।'' वे आलमारी खोलकर एक कागज़ निकालते हैं, ''सारा हिसाब इसमें है।''

कागज़ सौंपकर वे रामायण पर झुक जाते हैं। कुछ देर तक एक-दूसरे के इन्तज़ार में हम चुप रहते हैं। मुझे लग रहा है, ज़रूरी बातों के बहाने हमने सिर्फ़ ज़रूरी औपचारिकता निभायी है।

''बाई की कोठरी की चाबी तुम्हारे पास होगी।'' कुछ देर बाद वे फिर कहते है, ''उसमें एक पोटली है, जिसमें तुम्हारे नाना के पुराने कपड़े रखे हैं...किसी को दे देंगे, या खोलकर हमीं अपने लिए कुछ बनवा लेंगे। उन्हें तो ज़िन्दगी भर तृष्णा बनी रही...हमने कितना कहा मथुरा-वृन्दावन या बद्रीनाथ हो आओ ..।''

स्वर्गीया माँ के प्रति पिता की खीज अस्वाभाविक नहीं लगती, आश्वस्त करती है। माँ के बारे में मेरी और पिता की राय लगभग एक जैसी है। कारण अलग-अलग हैं।

''मैंने देखी नहीं।'' मैं कहता हूँ।

''देख लेना। चाबियों वाले गुच्छे में होगी। तुम्हारे नाना के पुराने समय के कोट भी हैं। उन पर ज़री का काम है। कुछ रुपया मिल जायेगा।'' पिता चश्मे के पीछे से मेरा चेहरा टटोल रहे हैं।

माँ हर बरसात के बाद कपड़ों को धूप दिखाया करती थीं और फ़िनायल की गोलियाँ डालकर यत्न से बाँध ट्रंक में रख देती थीं। पिता ने एक बार बेचने के लिए कोट माँगे, तो उन्होंने उद्दंडतापूर्वक इंकार कर दिया था।

''बाई बहुत ज़िद्दी स्वभाव की थीं।'' मैं कहता हूँ। कहने के साथ ही लगता है, यह बात नहीं कहनी चाहिए थी। पिता को दुख होगा।

पिता कुछ क्षण के लिए विचारमग्न हो जाते हैं, ''थीं तो,'' वे मेरा समर्थन करते हुए कहते हैं, ''उन्हीं की ज़िद की वजह से तो मैं कुछ नहीं कर पाया। इतना पैसा अपने पास रखे रहीं और मुझे इधर-उधर से लेना पड़ा। ब्याज के रुपयों से कोई धंधा हो सकता है क्या ? सब लोग मुझे दोष देते हैं कि तुमने सब बर्बाद कर दिया। पर मैंने बर्बाद नहीं किया, ख़र्च हो गया। खाने-पीने में कुछ खर्च नहीं होता क्या। फिर तुम्हारा ब्याह किया,

तुम्हें पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेजा, चार नाते-रिश्तेदारों का मान रखा... यह कोई नहीं सोचता।" रिश्तेदारों और परिचितों में पिता की असफलताएँ प्रसिद्ध हैं। पिता को इसका बहुत अफ़सोस है। वे हमेशा इसका असफलतापूर्वक प्रतिरोध करते रहे। माँ की मौत के बाद इन बातों की पुनरावृत्ति मुझे अजीब लगती है। इन छह-सात महीनों में हमारे लिए चीज़ों और सम्बंधों के अर्थ आमूल बदल गये। मेरी उम्र के यकायक कई वर्ष बढ़ गये। पिता अधिक विरक्त और धार्मिक हो गये। माँ के चले जाने से जो शून्य पैदा हुआ, वह हमें अपनी-अपनी जगहों पर और भी अकेला, अपरिचित और असहाय छोड़ गया।

"माँ की ज़िद न होती, तो चोरी भी न होती।" मैं वर्षों पहले अपने घर में होनेवाली एक महत्त्वपूर्ण घटना का ज़िक्र करता हूँ, जिसने हमें बेहद तबाही और मुश्किलों में डाल दिया था।

पिता को अच्छा नहीं लगता। वे कुछ देर तक रामायण पर निगाह दौड़ाते रहते हैं, फिर परमहंसत्व की मुद्रा में कहते हैं, "कहने को कह लो कि ज़िद्दी थीं पर दिल की साफ थीं...और फिर होता तो सब आदमी के प्रारब्ध से है। जब आदमी का भाग्य ख़राब होता है, तो उसकी बुद्धि भी ख़राब हो जाती है। सुनहु भरत भावी प्रबल...नहीं!" पिता अपने को सुधारते हुए दूसरी चौपाई पढ़ते हैं, "जाको प्रभु दारुण दुख देहीं, ताकी मति पहले हर लेहीं...।"

"हाँ होता तो सब भाग्य से ही है।" पिता की भाग्य वाली बात का समर्थन न करना अपने लिए असम्भव लगता है। पहले भाग्य के ख़िलाफ़ और कर्म के पक्ष में उनसे बहस किया करता था। तब पता लगता था, वे 'भाग्य' की ओट में अपने ग़लत कामों को न्यायोचित ठहराने की कोशिश कर रहे हैं।

"वैसे यह सही है कि उनमें बुद्धि कुछ कम थी।" पिता मेरा मन रखने के लिए कहते हैं। माँ थीं, तो हमें एक-दूसरे से इतना मतलब नहीं रहता था। उनकी मौत के बाद हम सहसा एक-दूसरे की उपयोगिता और ज़रूरत के बारे में सजग हो गये। पिता या मैं नहीं चाहते कि हम किसी कारण से एक-दूसरे से नाखुश रहें। हम तेज़ी से एक-दूसरे के आदी होने की कोशिश कर रहे हैं। यह बात अचरज में डालनेवाली है कि मुद्दत से एक-दूसरे को ग़लत मानते रहने के बाद माँ के न रहने पर हम इतनी जल्दी एक-दूसरे के प्रति इतने सहिष्णु हो गये।

"बल्लभ से मिलकर चलना।" मरने के पहले माँ ने पिता को बुला-

कर समझाया था।

मुझे किसी ने नहीं समझाया। माँ की मृत्यु के बाद रातों-रात अपने गिर्द का संसार जिस तरह बदल गया, उससे लगा था, तमाम चीज़ों के साथ नये सिरे तो जुड़ने की ज़रूरत है। इसके लिए सबसे ज़रूरी यह था कि पिता के अपने सम्बंधों के नये आधारों की तलाश की जाये।

"कभी तुम भी रात के वक़्त बाई के पास बैठ लिया करो।" एक दिन पत्नी ने कहा था। मैंने पत्नी को कभी गंभीरता से लेने लायक़ नहीं समझा। पर उस दिन उसकी गंभीरता वाक़ई गंभीरता से लेने लायक़ लगी थी। मुझे महसूस हुआ था कि माँ की बीमारी को लेकर मैंने ग़लत निष्कर्ष निकाल रखे हैं। दरअसल माँ मुझे हमेशा की तरह इस बीमारी में भी इतनी मज़बूत और कड़ियल लगी थीं कि मैं नही सोच सकता था कि उनके लिए कोई गंभीर बात हो सकती है।

माँ ज़ीरो पावर के मद्धिम प्रकाश में अपने कोठे के आगे खटिया पर लेटी थीं। मुझे देखते ही उनकी आँखों में अजीब तरह का भाव उभरा था। वे मेरे भीतर तेज़ आँखों से कुछ खोज रही थीं। कुछ देर तक उस तरह से घूरने के बाद वे सहसा उदास हो गयी थीं। मुझे लगा था, उन्हें मुझसे निराशा हुई है। उनकी आँखों में अपरिचय उग आया था। फिर वे हँसने लगी थीं। मैंने देखा था, उनके चेहरे पर हल्की-सी सूजन चढ़ आयी है। मैंने अपने आप को थोड़ा-सा उत्तेजित महसूस किया था। फिर अवश्यंभावी के लिए अपनी मानसिक तैयारी में जुट गया था।

"लोगों का कहना है, चेहरे की सूजन ख़राब होती है।" आँखों से मेरा चेहरा टटोलती हुई माँ बोली थीं, "अब अगले जाड़ों में तुम मुझे ग्वालियर या दिल्ली ले चलना। जीना होगा, तो कुछ दिनों चैन से जी लेंगे, नहीं तो जैसी राम की इच्छा।"

"जैसा तुम कहो।" मैंने तटस्थता से कहा था। मैंने उन्हें अनेक बार बीमार होते और बिना दवा के ठीक होते देखा था। मुझे अब भी विश्वास था, उन्हें कहीं जाने की ज़रूरत नहीं। वे जहाँ भी रहेंगी, स्वस्थ रहेंगी।

"और फिर जब मरना होता है, तो आदमी कहीं भी चला जाये, मौत से बच नहीं सकता..." माँ घुटनों पर हाथ बाँधकर दीवार की टेक लेकर बैठ गयी थीं। मैंने ग़ौर से देखा था—जहाँ-तहाँ उनके शरीर की हड्डियाँ उभर आयी थीं, वे धीरे-धीरे हाँफ रही थीं।

"इतनी लकड़ियों की ज़रूरत पड़ेगी।" उन्होंने दोनों हाथों से छोटे से गट्ठर का आकार बनाकर दिखाया था, "मेरे शरीर में हड्डियों के अलावा बचा ही क्या है।" वे थोड़ा-सा हँसी थीं। शायद उन्हें आभास हो गया था

कि यह उनकी अंतिम बीमारी है। उन्होंने कातरता से मेरी तरफ़ देखा था। यदि मैं उनके साथ शरीक़ हो सका होता, तो संभव था, वे रोने लगतीं। कुछेक पश्चाताप करतीं, मुझे अंन्तिम उपदेश देतीं। पर मेरे उनके बीच जोड़नेवाला वह तन्तु उग नहीं सका, जिससे हम एक-दूसरे की तकलीफ़ या दुःख को ठीक-ठीक महसूस कर पाते। मैंने अपनी हर विपत्ति और तकलीफ़ों में उन्हें जड़ और मतलबी पाया है। हालाँकि उस वक़्त मुझे अपनी जड़ता पर कोफ़्त हो रही थी। पर बहुत सी बातों पर आदमी का क़ाबू नहीं होता।

रात को माँ लेटी-लेटी गाने लगतीं, "बदरिया बरसे श्याम नहीं आये..." इस एक पंक्ति को वे कई तरह से खींच-खींच कर गातीं। पत्नी उनके पैर दबा रही होती। रात को सन्नाटे में उनकी आवाज़ डरावनी लगती। माँ भी मेरी तरह जीवन भर नास्तिक रहीं। यों वे तिथि-त्योहार कभी-कभी भगवान की मूर्ति के आगे सिर झुका आतीं। तुलसी-बिरवे के नीचे आटे का दिया जलातीं। पर इससे यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल है कि उन्हें ईश्वर में विश्वास था। वे अक्सर पूजा पर बैठे पिता को व्यंग्य से देखा करतीं। जन्माष्टमी या रामनौमी पर काकी उनसे उपवास करने को कहतीं, तो दो टूक जवाब देतीं, "हमें नहीं इन ढोंग धतूरों में विश्वास।"

"तुम से जाड़ों में कितना कहा कि इलाज के लिए ग्वालियर चली जाओ।" उनके सूजे हुए चेहरे की तरफ़ देखती हुई पत्नी अफ़सोस से कहती। पता नहीं कैसे, उसे पक्का विश्वास हो गया था माँ अब बचेगी नहीं।

"कहते हैं, प्राणी को मरते वक्त बहुत कष्ट होता है। जमराज के डर से जी बारह कोठरियों छिपता-फिरता...है," थोड़ा-सा हँसकर माँ अपनी बात को विनोदपूर्ण बनाने की कोशिश करतीं। पत्नी उनकी बात को गंभीरता से लेती, "दद्दा को तार कर दें ?"

पिता उस वक्त गाँव में खेती का काम देख रहे थे।

मेरी समझ में नहीं आ रहा था, माँ की बीमारी को कितनी गम्भीरता से लूँ। एक चिन्ता यह भी थी कि पिता ख़ामख़ाँ यहाँ आयेंगे, तो वहाँ काम का हर्ज होगा। यह भी तय नहीं था कि पिता आना ज़रूरी भी समझेंगे या नहीं। फिर एक दिन माँ की बीमारी का उल्लेख करते हुए पिता को लिख दिया था। पिता जी ने आते ही जिस तत्परता और कर्तव्य भाव से माँ की सेवा-सुश्रूषा का भार अपने ऊपर ले लिया, उससे अचरज हुआ था। पहली बार महसूस हुआ था कि माँ ज़रूर गम्भीर है। अपने अन्दर एक अजीब तरह के डर का एहसास हुआ था। माँ के प्रति अपनी सारी पुरानी तल्ख़ी

भुलाकर उस तरह सुश्रूषा में जुट जाने के पीछे पिता के पास ज़रूर कुछ कारण रहे होंगे। कुछ के बारे मे मैं सोच सकता था। कुछ उनके लिए नितान्त व्यक्तिगत होंगे, जिनके बारे में कोई नहीं जान सकता।

उस दिन शाम से रात जैसा अँधेरा फैलना शुरू हो गया था और तेज़ पानी बरसने लगा था। रात को लौटने पर पिता ने बताया था कि माँ पेशाब करने के लिए उठीं, तो गिर पड़ी थीं। अपनी आवाज़ में अतिरिक्त गम्भीरता लाकर उन्होंने कहा था—"आज वहीं लेट रहना। हम बारी-बारी से जागते हुए उनकी खोज-ख़बर लेते रहेंगे।"

"ठीक है।" मैंने कहा था। फट्टे के पर्दे के पीछे खाट पर कराहती माँ के पास बैठ कर समय काटना मुझे भयानक लगा था। मैं नहीं सोच पा रहा था कि उस स्थिति को कैसे बर्दाश्त करूँगा। माँ के प्रति अपने इस अन्तिम कर्तव्य को निभाने का साहस मैं नहीं जुटा पा रहा था।

"ये उनका अन्तिम समय है।" पिता ने भाँपते हुए कहा था। लगा था, वे भी भीतर से काफ़ी डरे हुए हैं और साहस जुटा रहे हैं। उनके स्वर में एक असहाय-सी निरपेक्षता थी कि वे मुझे बाध्य नहीं करते। उन्हें तो हर हालत में माँ की देख-रेख करनी ही है, जैसे भी बने। क्योंकि उनके आगे कोई विकल्प है नहीं। उनकी डबडबा आयी आँखों के पीछे मुझे अपने जैसा आतंक दिखा था। वे भी अपने आपको तैयार कर रहे थे। मेरी तरह। पर उनका संघर्ष बहुत यातनामय, बहुत भयानक था।

वह चीख़ सबसे पहले मैंने सुनी थी। छुरी की तरह तेज़, चमचमाती और धारदार। माँ के पास बिट्टो को छोड़ कर मैं अपने कमरे में चला आया था। कराहती हुई माँ के पास घंटा भर बैठे रहने के बाद मैंने अपने आपको बुरी तरह निचुड़ा हुआ पाया था और उनके पास लड़की को छोड़कर सहानुभूति प्रकट करने आये हुए दोस्त के पास आकर राजनीति डिस्कस करने लगा था। सबसे पहले भय हुआ था कि चीख़ कहीं बैठक में पिता के पास न पहुँच गयी हो। दूसरे ही क्षण मैंने अपने को माँ के कोठे की तरफ बेतहाशा भागता हुआ पाया था। मद्धिम रोशनी में बिट्टो परदे के बाहर डरी हुई खड़ी थी। बिना एक शब्द बोले मैं पर्दा हटा कर चबूतरे पर चढ़ गया था। कुछ देर तक कुछ भी नहीं समझ में आया था। फिर नीम-अँधेरे में उनकी धुँधली आकृति दिख गयी थी। माँ कोने में पेशाबवाले तसले के पास सिर के बल गुड़ी-मुड़ी ढेर की तरह पड़ी हुई थीं। कुछ देर मैं पसीने में तर-बतर भौंचक उस 'ढेर' की तरफ़ देखता रहा था। फिर मुझे लगा था, वह 'ढेर' सिर्फ़ माँ नहीं है। वह चरम मानवीय यातना का वीभत्सतम दृश्य था—

ह्यूमन सफ़रिंग परसोनीफ़ाइड। और लगा था, मेरी जड़ता जिसे मैं अभी तक अपने चारों तरफ़ मज़बूत करता रहा, एक झन्नाटे के साथ काँच की दीवार की तरह टूट गयी है। कुछ देर तक मैं आँखें फाड़े सुन्न हुआ खड़ा रहा था, फिर तेज़ी से झपटा था और माँ के नंगे शरीर को एक झटके से उठाकर खाट पर डाल दिया था। माँ को उठाते वक्त अचरज हुआ था कि उनका वज़न कितना कम हो गया है ! मुझे उनकी हड्डियाँ चुभी थीं। माँ को कष्ट हुआ होगा। हो सकता है, मैंने उन्हें बुरी तरह से पकड़ कर उठाया हो। यह भी हो सकता है कि गिरते वक्त उनके शरीर में कहीं गम्भीर चोट लगी हो। वे सारा वक्त एक ज़िद्दी बच्चे की तरह, बड़बड़ाती हुई मेरा विरोध करती रही थीं। खाट पर लिटाने के बाद मैंने उन्हें चादर उढ़ा दी थी और हाँफता हुआ पर्दे के बाहर निकल आया था।

"फिर गिर पड़ी ?" दरवाज़े पर पिता खड़े थे। "कितना कहा, उठना हो, तो बुला लिया करो।"

"कुछ देर आप यहाँ बैठेंगे !" उस आतंक से मुक्त होने के लिए वहाँ से हट आना मुझे अपने लिए ज़रूरी लगा था। पिता को वहीं छोड़कर मैं अपने कमरे में आकर सुस्ताने लगा था। देर तक वह भयानक दृश्य मेरी आँखों के आगे तैरता रहा। टिन पर गिरती बारिश के शोर को चीरकर माँ के कराहने की आवाज़ें आती रही थीं। पहली बार लगा था, मौत कितनी भयानक चीज होती है। शिद्दत से महसूस हुआ था। कोई चीज़ मेरे भीतर आहिस्ता-आहिस्ता मर रही है। माँ के कराहने के साथ लगता था, जैसे कोई मुझे आहिस्ता-आहिस्ता आरी से चीर रहा है। एक क्रूर अदृश्य मौत, जिसके बारे में मैं अभी तक कुछ भी नहीं जानता था, मेरे भीतर घटित हो रही है। मैंने पाया था, मेरे समस्त शरीर के रोम खड़े हैं। हड्डियों से कँपकँपी छूट रही है। और बनियान पसीने से भीग रही है। कुछ देर बाद फिर मैंने अपने को तैयार करने के लिए भयानक संघर्ष छेड़ दिया था। महसूस हुआ था, मैं घोर अनैतिक हो रहा हूँ। मैं माँ का शीघ्र अंत चाहता हूँ। हालाँकि सिर्फ़ चाहने से माँ की रक्षा भी नहीं की जा सकती थी।

माँ रात भर चीखती रहीं। तकलीफ़ से, या शायद डर से। वे मौत से भयानक संघर्ष कर रही थीं। वे मौत के साथ बारह कोठरियों में छिपने का असफल खेल, खेल रही थीं। सुबह होते-होते वे सहसा चुप हो गयी थीं। उनकी संघर्ष करने की शक्ति चुक गयी थी और वे सुन्न पड़ चली थीं। हमने कपड़े बिछाकर उन्हें जमीन पर लिटा दिया था। उनकी आँखों के आगे भगवान की तसवीर रखकर अगरबत्तियाँ जला दी थीं और कीर्तन शुरू कर दिया था। पिता उनके सिर को अपनी गोद में रखे रामधुन गा रहे

थे। उनका स्वर काँप रहा था। माँ की आँखें पथरा रही थीं। उनकी साँस रुक रही थी... माँ मर रही थीं।

"अब...!" अन्त में पिता ने कहा था। वे करुणा से मुस्कराये थे कि आखिर माँ अपनी यातना से मुक्ति पा गयी। कीर्तन बन्द हो गया था।

डॉक्टर को बुलाया गया था। उसने दबी आवाज़ में घोषित किया था कि माँ का शरीर मिट्टी हो गया।

सहसा औरतों का रोना शुरू हो गया, कोरस के रूप में। पत्नी की आवाज़ सबसे तेज़ थी। रोते वक्त वह बराबर सजग दिखती थी कि सबसे तेज़ आवाज़ उसी की हो। दिए की काँपती रोशनी में मैंने माँ का निर्जीव चेहरा देखा था। इन्होंने मुझे नौ महीने पेट में रखा। खिला-पिला कर बड़ा किया...मगर मेरे भीतर पुत्र संस्कार नहीं डाल सकीं। इसके बाद मैं माँ को नहीं देखूँगा। मैं माँ को याद रखूँगा, या भूल जाऊँगा ? क्या पता !

मैंने पाया था, मेरी आँख चुपचाप बह रही हैं। मैं रोते-रोते पश्चाताप का सुख भोग रहा हूँ। मैं मरी हुई माँ के आगे अपनी असमर्थताओं और अपराधों के लिए क्षमा माँग रहा हूँ। मैं माँ के लिए ईश्वर से, जिसमें मुझे विश्वास नहीं, अन्तिम प्रार्थना कर रहा हूँ। रोते हुए बार-बार मेरी आँखों के सामने 'द लास्ट सपर' वाले ईसा की गम्भीर शान्त मुद्रा घूम जाती— 'तुम मेरे आगे अपने पापों को स्वीकार करो। मैं तुम्हारी मुक्ति के लिए सौ नर्कों की यातना से गुज़र जाऊँगा।'

माँ की बीमारी के दौरान और उनकी मृत्यु के बाद मैं बाहरी तौर पर जिस तरह संतुलित रहा, उससे पिता ज़रूर विचलित बल्कि आतंकित हुए होंगे। वे मुझे दुःखी देखना चाहते होंगे। जबकि दरअसल मैं सिर्फ़ अब नार्मल था। माँ की मृत्यु के बाद पिता ने तेरह दिन तक गरुड़-पुराण बँचवाया था। उन्हें अपेक्षा रही होगी कि मैं कथा में शरीक होऊँ, जबकि मैं अपने कमरे में बन्द होकर छतों, आँगन और टिन-शेडों पर अंधाधुंध गिरती बारिश की आवाज़ें सुनता हुआ पड़ा रहता और सहसा अपरिचित और भयानक हो गये अपने गिर्द के संसार से जूझने के तरीक़े सोचता रहता। एक दिन महसूस हुआ था, मेरे सिर के बीचोंबीच एक अदृश्य तीसरी आँख पैदा हो गयी है और मैं अपने इर्द-गिर्द छिपकर चलने वाले खतरों और षड्यन्त्रों को बखूबी और साफ़-साफ देख सकता हूँ।

मातमपुर्सी के लिए आने वाले पिता के पास बैठक में तम्बाकू खाते या सिगरेट पीते हुए माँ के गुणों की चर्चा कर रहे होते। उस वक्त मैं पसीने से तर-बतर कच्ची नींद की हालत में किसी दुःस्वप्न में दबा होता, या

बारिश की आवाज़ें सुनता, रोशनदान से आने वाली रोशनियों की तरफ़ देखता हुआ अपने गिर्द के खतरों को ठीक-ठीक पहचानने की कोशिश में डेस्पेरेशन की हद तक पहुँचकर हाँफ रहा होता।

रात को पिता चबूतरे के तख्त पर लेट जाते। पत्नी अटारी पर भीतर की कुंडी चढ़ाकर निश्चित खुर्राटे भरने लगती। आँगन, चौका, गुसलखाना, बरसाती, स्टडी, बैठक—सब जगह की बत्तियाँ जलाने के बाद मैं बरांडे में सोने की कोशिश करने लगता। रात को जब आँख खुलती, तो रोशनी में चमकते हुए दरवाज़ों और खिड़कियों के काँच और रोशनदान, दीवारों पर खिची हुई परछाइयाँ और झींगुरों की आवाज़ों और थमी हुई हवा में दम साध कर खड़ी आँगन की बोगनबेलिया और जूही मूक साक्षी की तरह लगते—उस घटना के, जो रात की ख़ामोशी में कुछ देर बाद मेरे साथ घटेगी। कभी चौंक कर आँख खोलता, तो लगता, जैसे अभी-अभी मेरे सिरहाने कोई खड़ा हो और मुझे उठते देखकर अभी-अभी हवा में घुल गया। फिर लगता, रोशनदानों, अधखुली खिड़कियों, माँ वाले कोठे के दरवाज़े या आँगन के नीम-अँधेरे कोनों से कोई मुझे लगातार देख रहा है। अपनी आँखे मलता हुआ महसूस करता कि मेरे घर की सारी दीवारें काँच की तरह पारदर्शी हो गयी हैं और मुझमें दिलचस्पी रखने वाले लोग मुझे छिप कर देख रहे हैं। लगता, मैं अपने चारों तरफ़ विगत की तमाम अनुपस्थित चीज़ों से घिरा हुआ हूँ। वह एक अजीब-सा क्षण होता है, जो न अतीत होता न वर्तमान। दोनों के बीच स्थित एक खिचा हुआ अन्तराल होता, त्रासद, भयानक और अनिर्वचनीय।

मैं देर तक सोता रहता। पिता तड़के उठकर सब जगह की बत्तियाँ बुझाते। कूड़े के ढेर से कोई कोरे कागज़ का पन्ना, बटन, सुतली का टुकड़ा या टूटी हुई पेंसिल खोज निकालते और दबे स्वर में बुदबुदाते—"सब बर्बाद किये दे रहे हैं।" और लाठी उठाकर घूमने चले जाते। पत्नी चाय का प्याला लेकर आती और घुटना हिलाकर मुझे जगाती। और एक नजर भरपूर हिक़ारत से देखने के बाद चली जाती, स्वार्थी भाव से, मेरी हर तकलीफ़ और चिन्ता से लापरवाह और असम्बद्ध...।

मैं सनक की हद तक चौकन्ना हो गया था। हर कमरे में ताला डाले रहता, कुपथ्य नहीं खाता। बिजली, आग और पानी से डरता, फिर भी लगता कि मैं सुरक्षित या आश्वस्त नहीं। फिर मैंने परिचितों से, फिर दोस्तों से, फिर पत्नी और पिता से मिलना-जुलना बन्द कर दिया था। मैं दिन भर अपने बन्द कमरे में दरवाज़े और खिड़कियों पर काले पर्दे गिराये या तो दुःस्वप्नों में दबा हुआ सोता, या सिगरेट पर सिगरेट फूंकता हुआ अपनी तरफ़ बढ़े

चले आने वाले वड़े-बड़े नाखूनों वाले मज्जाहीन पंजों से बचे रहने की योजनाएँ सोचता। कभी ज़ीरो पावर बल्ब जलाकर आदमक़द आईने के आगे खड़ा हो जाता... ।

फिर मैंने पाया था, मुझे इंसोमनिया हो रहा है। मुझे संग्रहणी का रोग हो गया है। मेरी याददाश्त कमज़ोर हो रही है। मैं अपनी प्रेमिका, बच्चों, ऋतुओं, दिनों और फूलों के नाम भूल कर रहा हूँ। लगता था, मुझे जीते जी एक अन्धे सेल में दफ़न कर दिया गया है। मेरे चारों तरफ़ गिरती हुई काली बर्फ़ है, सड़ते हुए शरीरों की बदबू है और बेरूप बिना हाथ-पैरों वाली लिज़लिज़ी आकृतियाँ... ।

पता नहीं, वह स्थिति कब तक चली और मेरी उस तीसरी आँख का, जो मेरे हर रोम की खिड़की से बाहर की तरफ़ झाँकती थी, क्या हुआ ! और उसका माँ की मौत का क्या सम्बन्ध था ! पिता ने ज़रूर मेरे बारे में ग़लत निष्कर्ष निकाल लिये होंगे, मुझे नहीं पता। मुझे तमाम चीज़ों की तरह पिता भी बदले हुए लगे थे। उसकी तमाम आदतें, जो उनकी शख्सियत का अहम हिस्सा बन चुकी थीं, बदल गयी है। पिता सहिष्णु हो गये हैं। यहाँ तक कि मैं उनके आगे यदि सिगरेट भी पीने लगूँ, तो इसे भी वे शालीनतापूर्वक बर्दाश्त कर जायेंगे।

हो सकता है, पिता को भी सब कुछ बदला-बदला लगा हो। माँ की मौत के बाद एक नर्क, जो मैंने भोगा, वैसा ही कोई नर्क उन्होंने भी भोगा हो...।

पिता धर्म और वैराग्य में पलायन कर रहे हैं। वे प्रतिदिन नियम से दो घंटे तक पूजा करते हैं। खाने से पहले कौवों और कुत्तों को एक-एक रोटी खिलाते हैं। फिर अपनी जगह को पानी के छींटों से पवित्र करने के बाद पद्मासन लगाकर बैठते हैं और आचमन करते हैं। फिर ठाकुर जी के भोग के लिए तोड़े गये पाँच ग्रासों से भोजन शुरू कर देते हैं। खाने के बाद कमर में वही तौलिया लपेटे बैठक के बग़लवाले कमरे में पहुँच कर बसूले से साधुओं और कन्याओं के लिए खड़ाऊँ बनाने लगते हैं। रात को कहीं रामायण पर प्रवचन होते हैं, तो सुनने पहुँच जाते हैं और लौटकर अपने हमजोलियों के साथ किसी चौपाई की व्याख्या को लेकर कथावाचक से अपना मतभेद प्रकट करते हैं, और फिर तख्त पर कंबल ओढ़ कर मेरा इंतज़ार करने लगते हैं। मेरे लौटने पर वे उठकर सिटकनी खोलते हैं और कंबल में लिपटे अपने कमरे में चले जाते है और भीतर की साँकल लगा बत्ती बुझाकर लेट रहते हैं। फिर पता नहीं चलता, वे कब तक जागते रहे, कब सो गये। मैं समझता हूँ, सोने के पहले वे ज़रूर माँ की मौत के बाद सहसा

गड़बड़ा गये अपने गिर्द के संसार के बारे में सोचते होंगे। और तय करने की कोशिश करते होंगे कि अब उनकी क्या भूमिका हो। पिछले महीनों में वे तेज़ी से बदले हैं। उन्होंने अपनी घृणा, असहमति और ईर्ष्या को छिपाना सीख लिया है। वे हर जगह सम्मानपूर्वक सहमत होने की कोशिश करते हैं। मुझे पता है उनके भीतर कहीं बहुत गहरे कोई कोना है, जिसमें मेरे लिए सिर्फ़ घृणा और ईर्ष्या है। मैं उनके सारे साँचों को तोड़ता हुआ अपनी आकांक्षाओं, दुर्बलताओं, शक्ति और मज़बूरियों के साथ अपने हिसाब से उगा हूँ। मैंने अपनी सफलताओं से उनके अतीत को ग़लत और उनकी भविष्यवाणियों को झूठा सिद्ध कर दिया। उन्हें अफ़सोस होगा कि मैं उनका अनुयायी नहीं, कि मैं उनकी समझदारी का लोहा नहीं मानता, कि मैंने उनके तजुर्बों से लाभ उठाने की बात नहीं सोची, कि मैं भाग्य की चर्चा करने वालों को अदूरदर्शी, ग़ैरज़िम्मेदार और अगंभीर मानता हूँ, कि मैं पिता नामक संस्था में श्रद्धा नहीं रखता। पिता के साथ मेरे तमाम रिश्ते औपचारिक हो रहे हैं। ज़िन्दगी भर उन्हें किसी से लगाव नहीं रहा—न माँ से, न मुझसे, न धन-दौलत से। फिर भी उनके जीने के कुछ आधार होंगे। माँ बताती थीं कि पिता कभी बहुत असहिष्णु और गुस्सैल स्वभाव के थे। अब उम्र, असफलताओं और बदले हुए वक़्त की वजह से वे एक टूटे हुए आदमी हैं। हालाँकि हमारी उम्रों में तीस वर्ष का फ़ासला है। पिता जब मेरी उम्र के थे, तब खूब मस्त, निश्चित और स्वस्थ रहते थे। तब दूसरे क़िस्म का वक्त हुआ करता था। वे अपने वक्त की मिसाल थे जैसे अपने वक्त की मिसाल मैं हूँ।

भीतर से बरसाती के टूटे टिन के लगातार हिलने की आवाज़ आ रही है। खिड़की से नीम अँधेरे में डूबा आँगन, छत के बल्ब की रोशनी में चमकती ज़ीने की सीढ़ियाँ और सीढ़ियों पर हिलती हुई बोगनवेलिया की परछाईं दिखायी देती है। हवा और बरसाती के टिन के अलावा भीतर से कोई आहट नहीं आती। पत्नी अपने कमरे को भीतर से बन्द करने के बाद निश्चितता से सो रही होगी। मैं तय करने की कोशिश कर रहा हूँ—मुझे आये हुए कितनी देर हुई होगी। दस-पाँच-चार-तीन मिनट? मैं थकान महसूस कर रहा हूँ। भीतर ही भीतर तय करता हूँ कि यहाँ से जाने के बाद एक कप कॉफ़ी पिऊँगा और काफ़्का की 'मेटामौरफोसिस' पढ़ते हुए सो जाऊँगा। मैं आदमी की यंत्रणा, और उससे दूसरों के मन में उपजनेवाली करुणा, सहानुभूति, उपेक्षा; घृणा, भय और हिंसा के बारे में सोचने लगा हूँ। लग रहा है, घटनाओं और परिस्थितियों से स्वतंत्र मेरी कोई इयत्ता

नहीं। मैं अपने भीतर मात्र प्रतिक्रियाओं को ढोनेवाला एक मशीनी यंत्र हूँ।

एक क़दम और आगे बढ़कर पिता से पूछता हूँ, "मेरी कोई चिट्ठियाँ आयीं ?"

वे तत्परता से आलमारी खोल कर पाँच-छह लिफ़ाफ़े मेरे हाथ में दे देते हैं। लिफ़ाफ़ों की इबारत पढ़ने का बहाना करता हुआ मैं सोचने लगता हूँ—अब !

और फिर बिना पूर्व निश्चय के मैं सहसा पिता के पैरों पर झुक जाता हूं। पैर छूते वक्त लगता है, मैं अन्दर ही अन्दर उन्हें क्षमा कर रहा हूँ। झुका होने के कारण मैं पिता का चेहरा नहीं देख पाता। पर अपने सिर को छूनेवाली उनकी उँगलियों की कँपकँपी से महसूस कर लेता हूँ कि अपने पितृत्व का स्मरण करते हुए वे मुझे क्षमा करने की कोशिश कर रहे हैं। हालाँकि हमारे भीतर एक-दूसरे के अस्वीकारों के जंगल हैं और हमें पता है कि हम एक-दूसरे को कभी भी अंतिम रूप से क्षमा नहीं करेंगे।

•

दुरभिसंधि

काली होने के बावजूद लड़की आकर्षक थी। खासकर उसकी छातियाँ, कूल्हे और गरदन। आँखें चेहरे के अनुपात में कुछ छोटी थीं, पर उनमें एक स्थायी चमक थी। बात करते या रजिस्टर में नोट करते वक्त वह आहिस्ता-आहिस्ता मुस्कराती या मस्ती में आकर गुनगुनाने लगती। हो सकता है, यह भी तमाम बातों की तरह उसकी कोई आदत या नौकरी का हिस्सा हो। उसकी इस आदत से मैं काफ़ी प्रोत्साहित हुआ था। रजिस्टर में मेरा नाम, पता लिखने के बाद उसने कार्ड पर नंबर चढ़ाया, फिर खिड़की के पीछे से पतली आवाज़ में कहा—भीतर आ जाइये।

भीतर दाखिल होते समय पता नहीं क्यों मुझे ख़ामख़ाह लगा था कि अब मैं उससे उसकी व्यक्तिगत ज़िंदगी के बारे में कुछ सवाल करूँगा, जैसे, वह यहाँ कब से है? यह नौकरी उसे कैसी लगती है? वह किसी बेहतर नौकरी की तलाश क्यों नहीं करती? उसे मिल सकती है, कोशिश करने पर क्या नहीं मिल जाता! वह होशियार, आकर्षक और स्मार्ट है। उसके पिता कहाँ के रहने वाले हैं? उसकी कोई और भी बहन है? है, तो वह भी उसी जैसी चुस्त और स्मार्ट है? उसकी उम्र क्या है? इत्यादि।

"इधर", मुझे देखते ही उसने वेइंग-मशीन की तरफ़ इशारा किया—"हिलिये मत। एकदम तनकर खड़े रहिये।" उसने कहा और थोड़ा-सा मुसकरायी...लापरवाह मस्ती से।

मुझे वहीं छोड़कर उसने टेबल पर जाकर रजिस्टर और कार्ड पर मेरा वज़न नोट किया। फिर मुझे दीवार के सहारे खड़ा कर मेरी ऊँचाई नापी। इसे भी रजिस्टर और कार्ड पर नोट किया।

"पिछले महीने के मुक़ाबले मेरा वज़न तीन किलो कम हो गया", मैंने उसे बताया।

"डाक्टर को बताना," उसने कहा।

"ऊँचाई तो हमेशा इतनी ही थी...मेरा मतलब है, एक अरसे से। कोई उम्मीद नहीं कि इसमें कोई कमी या बढ़ोतरी होगी।"

उसने मेरी बात का नोटिस नहीं लिया। मुझे कार्ड सौंपती हुई बोली —"उधर बरांडे में इंतज़ार कीजिये...डाक्टर की केबिन के सामने नंबर आने पर आपको बुला लिया जायेगा। आपका कार्ड नंबर है..."

"वन सेवेंटी टू।" मैंने बताया।

"येस दट्स इट।" वह फिर मुस्करायी और खिड़की पर खड़े दूसरे मरीज़ की तरफ़ मुख़ातिब हो गयी।

बाहर मैदान और पहाड़ियों पर मई की झक धूप फैल रही थी। कॉरि-डोर की मेहराबों में लगे टाट के परदे गिरा दिये गये थे। कभी सूँ-सूँ करते गर्म अँधड़ का झोंका परदा ठेलकर भीतर घुस आता और बरांडे के फ़र्श पर बारीक धूल फैलाकर लौट जाता। चार दरवाज़ों के बाद पोर्टिको थी। उसके सामने डाक्टर का केबिन। केबिन की दीवार से सटकर एक बेंच पड़ी थी। उस पर तीन लोग पसर कर बैठे हुए थे। मुझे देखकर उन्हें थोड़ी-सी परेशानी हुई। कुछ देर तक वे मुझे हिक़ारत से घूरते अपने चेहरों पर आभिजात्य ओढ़े आपस में बतियाते रहे, फिर एक ने मुझसे जानना चाहा कि मैं क्या चाहता हूँ। यह जानने पर कि मैं भी उन्हीं में से एक हूँ, वह आत्मीयता प्रकट करता हुआ एक तरफ़ को खिसक गया। इसके बाद वे फिर उसी तरह गम्भीर और गुस्सैल भाव से बतियाने लगे।

सामने दूर-दूर तक फैला लाल बजरी का ऊँचे-नीचे ढूहों वाला मैदान दिखता था ..सफ़ेद चिलचिलाती धूप में तपता धूल के बगूले उड़ाता हुआ। पोर्टिको के नीचे एक मरियल टट्टू वाला ताँगा खड़ा था। ताँगेवाला डंडे का सहारा लेकर ऊँघ गया था। टट्टू अपनी दुम से अपने छिले हुए पुट्ठों की मक्खियाँ झाड़ता डामर की सड़क पर ज़ोर-ज़ोर से टापें पटक रहा था। पोर्टिको के ऊपर फैली बोगनबेलिया के पत्ते झड़ गये थे। उस पर लगे हुए चार-छह फूल, फूलों की अपेक्षा लाल काग़ज़ ज़्यादा लगते थे। मैदान में जहाँ-तहाँ पीले फूलों वाले भटकटैया के पौधे, ढूह और खंदक थे। कभी अँधड़ का झोंका आता, तो कुछ देर के लिए सब कुछ धूल की तहों में छिप जाता। फिर धीमे-धीमे दृश्य साफ़ होने लगता। भटकटैया के हिलते हुए फूल, झक धूप में चिलचिलाता हुआ लाल मैदान, सड़क के किनारे पेड़ों और चूने से पुते हुए मकानों की क़तारें, पहाड़ियाँ और सबके पीछे जस्ते की परत जैसा तपता हुआ आसमान...।

मुझे कोलाइटिस है। मेरे बग़ल वाला कह रहा था—"दर-असल मैं बेहद सेंसटिव हूँ। अब ये साले डाक्टर कहते हैं कि इसका भी इलाज है!"

वह तल्ख़ी से हँसा। उसने मोटे खद्दर का कुरता-पाजामा पहन रखा था। उसके सिर के आधे से ज़्यादा बाल सफ़ेद हो गये थे और खड़े थे। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। आँखें छोटी-छोटी और हिक़ारत से भरी हुईं। वह ज़्यादा देर तक आँखें मिलाकर नहीं बोल पाता था। बात करते वक्त वह अंगुलियाँ चटकाता, या अपनी क़लाइयों पर केंचुओं की तरह उभरी नसों को सहलाता, या घुटनों को थपथपाता। कुल मिलाकर वह सनकी लगता था—"जबकि मैं जानता हूँ कि इसका इलाज नहीं है! दीज़ डॉक्टर्स आर फ़ूल्स ऑर रादर दे विफ़ूल यू! यू कैन नॉट बि क्योर्ड ऑफ़ कोलाइटिस अनलेस एवरीथिंग अराउंड यू इज़ चेंज्ड टु योर विल। फिर भी मैं इलाज के लिए आया हूँ! एक बीवी और तीन बच्चे हैं। मैं सोच भी नहीं पाता कि अगर मुझे कुछ हो गया, तो उनका क्या होगा। आप समझ रहे हैं न...!" उसने अपनी गरदन और कंधे झटके—"डर आदमी को किस क़दर मूर्ख और अंधविश्वासी बना देता है! मैंने एक जगह पढ़ा है कि जीवन के अन्तिम दिनों में पंडित नेहरू भी अंधविश्वासी हो गये थे। तंत्र-मंत्र में विश्वास करने लगे थे। पर साहब, वे बड़े आदमी थे। उनके अंधविश्वासी होने का वाजिब कारण था...पॉवर। पर हम मीडियाकर्स की हालत एकदम भिन्न है। हमें अपने बच्चों के लिए ज़िंदा रहना है...नैतिक बाध्यता के तहत।" उसने फिर अपने कंधे झटके और दीवार से टिककर बैठ गया।

"मुझे अपने खून की जाँच करानी है।" बोलने वाला एक दुबला-पतला नौजवान था। उसने चुस्त मगर गंदी पैंट-शर्ट पहन रखी थी। उसके बाल धूल से भरे हुए थे। आँखों में कीचड़ और बदन पर मैल जमा था। बात करते वक्त उसके मुँह से दुर्गन्ध का भभूका उठता था। लगता था, वह कई दिनों से नहाया नहीं था।

"क्यों साहब, रेस के बारे में आपका क्या ख़याल है?" तीसरे ने कहा। वह ढीला-ढाला सूट और काले रंग की टाई पहने रिटायर्ड आफ़िस सुपरिंटेंडेंट-नुमा व्यक्ति था। उसकी नाक नुकीली और चश्मे का काँच काफ़ी मोटा था—"मेरा मतलब है, खून की प्योरिटी के बारे में आपका क्या विचार है?" उसने हाथ उठाकर टाई की गाँठ को ऊपर सरकाया, उसकी कमीज़ का ऊपर वाला बटन ग़ायब था—"आइ थिंक, नो बडी इन इंडिया कैन क्लेम टु बी प्योर ब्लड...ईविन अवर प्राइम मिनिस्टर्स संस! वी आर ऑल हाइब्रिड्स...!" अपने जुमले से प्रोत्साहित होकर वह थोड़ा-सा हँसा—"सिंबॉलिक ऑफ़ अवर सिंथेटिक कल्चर...!"

"आपको पता है, खून टेस्ट कराने के लिए कहाँ जाना होता है?' लड़के ने मुझसे पूछा।

आफ़िस सुररिंटेंडेंट-नुमा बुड्ढा अपने मुँह के आगे मुट्ठी लगाकर शालीनतापूर्वक खाँसने लगा।

"पहले कार्ड बनवाइये...उधर...!" मैंने उस कमरे की तरफ इशारा किया—"कार्ड पर आपका वज़न, पेशा, उम्र और ऊँचाई लिखी जायेगी।"

"ओह !" लड़के ने निराशा से मेरी तरफ़ देखा और आँखें मूँदकर मुट्ठी से माथा ठोकने लगा—"दफ़्तर में मेरी किसी से नहीं पटती...मैं बहुत सेंसटिव हूँ। मुझसे बेईमानी, अन्याय और मक्कारी बरदाश्त नहीं होती। मैं अफ़सर को खुश नहीं रख पाता। पिछले महीने मेरा प्रमोशन ड्यू था पर सुना है कि मेरे कैरेक्टर-रोल में मेरे खिलाफ़ एक बहुत ज़बरदस्त एंट्री है। मेरी पत्नी को विश्वास हो गया है कि अब अपनी सारी उम्र मैं इसी कुर्सी और ग्रेड में खपता रहूँगा। उसे इनसोम्निया हो गया है। उसे मुझसे पहले जैसी सहानुभूति नहीं रही...इसके बावजूद कि मुझे कोलाइटिस है। पिछले वर्ष रीजनल रैली में मैं फर्स्ट आया था। क्रासकंट्री और हाई जंप में मैंने रिकार्ड स्थापित किये हैं।" नौजवान बता रहा था—"सुनते हैं, यहाँ खून मोल लेते हैं...पचीस रुपये की बोतल। मैं दो साल से नौकरी की तलाश में था। अगले हफ़्ते मेरा इंटरव्यू है। रेलवे वाले स्पोर्ट्समैन को तरजीह देते हैं। मुझे इंटरव्यू के लिए कपड़े सिलवाने हैं। मेरा बाप जल्लाद है। आप नहीं सोच सकते, कोई बाप ऐसा भी हो सकता है। वह नियम से रात को शराब पीकर लौटता है, माँ को अपने कमरे में बुलाता है; फिर पीटता है...जानवर की तरह। मुझे उम्मीद है, मेरा खून ले लिया जायेगा। मैं स्पोर्ट्समैन हूँ...नौकरी चाहता हूँ...मेरा खून शुद्ध है...।

"उधर", मैंने उँगली से इशारा करते हुए बताया—"वहाँ एक काली मगर स्वस्थ लड़की है। वह बता सकती है। तुम उसे बताना कि तुम स्पोर्ट्समैन हो और अपना खून बेचना चाहते हो। शी विल गिव यू ए स्माइल। वह स्मार्ट है...।"

"कुंडली के हिसाब से आने वाले तीन महीने मेरे लिए बेहद खराब हैं। शनि का प्रकोप है। 'म' मेरे लिए मनहूस अक्षर है। स्वामीजी का कहना है कि इन तीनों महीनों में मेरे साथ कुछ भी हो सकता है, यानी कि मैं मर भी सकता हूँ। मेरी लड़की का अपहरण हो सकता है। मेरा लड़का सड़क पर चलता हुआ यहाँ नक्सलाइटों द्वारा मार दिया जा सकता है... क्यों साहब, यहाँ लैट्रिन किधर को है ? मैं इसलिए पूछ रहा हूँ, क्योंकि मुझे किसी भी वक्त ज़रूरत पड़ सकती है। मैं साफ और बेबाक आदमी हूँ। क्यों साहब, ईमानदार आदमी अन्त में कोलाइटिस का मरीज़ क्यों हो जाता है ? मेरे अफसर को मेरे मुँह से बदबू आती है, हाँलाकि मैं दोनों वक्त ब्रश

करता हूँ। मेरी पत्नी कहती है कि मैं परम स्वार्थी हूँ...स्वार्थी, झूठा और ग़ैरज़िम्मेदार। मेरे जैसे आदमी को गृहस्थी बसाने का कोई हक़ नहीं था। इस अस्पताल में कहीं लैट्रिन तो होगी ? हर अस्पताल में होती है।" फिर वह चुप होकर डॉक्टर के केबिन की तरफ देखने लगा, जिसके दरवाज़े पर सफ़ेद परदा पड़ा हुआ था। दरवाज़े के पास सफ़ेद वरदी वाला चपरासी पास में खड़ी नर्स के साथ चुहल कर रहा था।

"इससे पूछा जाये कि डॉक्टर कब तक आयेगा ?" रिटायर्ड सुपरिंटेंडेंटनुमा व्यक्ति ने कहा—"सुना है, वह क़ाबिल आदमी है...ही इज़ फ्रॉम ए हाइ फैमिली।"

"ए...!" कोलाइटिस वाले ने चपरासी को इशारे से बुलाया—"डॉक्टर साहब कब तक आयेंगे ? यहाँ लैट्रिन किस जगह है ?"

"मुझे अपना खून टेस्ट कराना है। यह ज़रूरी है।" नौजवान ने कहा।

"मुझे दु:स्वप्न आते हैं।" मैंने कहा—"मेरा कार्ड बन गया है। नम्बर वन सेवेंटी टू। मैं जानना चाहता हूँ कि जो कुछ मुझे दिखायी देता है, वह सच है, या झूठ ? मैं जानता हूँ कि मेरे इर्द-गिर्द की चीज़ें इतनी भयानक क्यों हैं ? और 'वह' जो हर वक्त मेरी घात में लगा रहता है, उसकी वास्तविक शक्ल कैसी है ? उसने एक लबादा ओढ़ रखा है। उसके एक हाथ में अभियोगों की फेहरिस्त है, दूसरे में एक पतली रस्सी। मैं जानना चाहता हूँ कि उसकी जेबों में भरा हुआक्लोरोफार्म किस कम्पनी का बना हुआ है ? उस रस्सी की मोटाई कितने मिलीमीटर है ? मैं ऑवर ऑफ जजमेंट में विश्वास क्यों करने लगा हूँ, जबकि मैं ईश्वर और नियति, दोनों ही में विश्वास नहीं कर सकता ?"

वह व्यक्ति, जो चपरासी होने के बावजूद इस वक्त खुद को अफ़सर जैसा महत्त्वपूर्ण समझ रहा था, हमारी बातों से तन गया। उसने एक शरारत भरी नज़र साथ वाली नर्स पर फेंकी और हिक़ारत से बोला—"डॉक्टर साहब मीटिंग में गये हैं।"

"ये मीटिंग का वक्त है ?"

"हाँ...हाँ, क्यों ?" चपरासी अकड़ गया।

"मेरा मतलब है, किस बात की मीटिंग ?" कोलाइटिस वाले ने पूछा—"आपने यह नहीं बताया कि लैट्रिन किधर को है ?"

"आप लोग अख़बार नहीं पढ़ते ?" चपरासी ने ऐंठकर कहा।

"मुझे अपना खून बेचना है।" नौजवान ने दबी ज़बान से कहा।

"कोलाइटिस से आदमी जल्दी तो ख़ैर नहीं मरता, पर मुझे अपने कर्त्तव्य पूरे करने हैं। आई विल बी ए मॉरल कावर्ड इफ़ आई डाई विदाउट

फ़ुलफ़िलिंग माइ ड्यूटीज़ !"

"आपको सुपरनैचुरल चीज़ों में विश्वास है ?" मैंने कहा—"बचपन में मुझे एक बार साँप-विच्छू दिखा करते थे। आपको थ्योरी ऑफ़ इवॉल्यूशन में विश्वास है ? आपको सेकुलरिज़्म, सोशलिज़्म में विश्वास है ? आपको डेमोक्रेटिक सोशलिज़्म और व्यक्तिपूजा में विश्वास है...क्रान्ति के पहले दौर में 'एसेंशल कमोडिटीज़ गेटिंग प्रिफ़रेंस ओवर ह्यूमन कमोडिटी' पर विश्वास है ? आपको हिटलर, लेनिन, माओ और उनके कंसेन्ट्रेशन कैम्पों में विश्वास है ? आपको 'हिस्ट्री इज़ ए शियर फ्रॉड' में विश्वास है ? आपको समाजवाद और नैतिक मूल्यों में विश्वास है ? आपको यू० न० ओ० में विश्वास है ? आप बता सकते हैं कि ये सब क्या है...काले लबादे वाला अदृश्य आततायी, अपराधों की फ़ेहरिस्त, पतली रस्सी वाला फंदा, क्लोरोफ़ार्म, ये सब क्या हैं ? एक ही तरह का दुःस्वप्न, जो बार-बार उसी आतंक को जगाता है, यह कौन-सा फ़िनामेंनन है ?"

चपरासी अपनी से जगह बैठा-बैठा हम लोगों की तरफ दिलचस्पी से घूरता रहा। साथ वाली नर्स के किसी रिमार्क पर वह ज़ोरों से हँसा, फिर हमारी तरफ़ देखकर बोला—"इंडिया के अन्दर प्रजातंत्र चल रहा है। ये सब-के-सब वोटर हैं।" फिर वह हमें संबोधित करता हुआ बोला—"क्यों भाइयो, तुम लोग सामाजिक परिवर्तन में विश्वास करते हो ?"

"मैं तो करती हूँ।" नर्स मटककर बोली—"आई लाइक चेंज। खोसला कमेटी की रिपोर्ट एकदम क्रान्तिकारी है। तो आज फर्स्ट शो का तय रहा ? मैं गुलाबी रंग की साड़ी में आऊँगी। मुझे भारतीय आधुनिकता पसन्द है...भारतीयताकरण से नफ़रत है।"

नर्स दाँत निकालकर हँसने लगी। उसकी अदा पर खुश होकर चपरासी ने जेब से बीड़ी निकालकर सुलगा ली और स्टूल पर उकड़ूँ बैठकर हम लोगों की तरफ देखने लगा।

"साहब पार्टी में गये हैं।" उसने एलान किया...चैलेंजिंग टोन में। वह नर्स को प्रभावित कर रहा था।

"बॉस की विदाई-पार्टी में ?"

"तुम्हारे बॉस किस कमीशन के सदस्य हैं ?"

"मैं मरना नहीं चाहता ! माइन इज़ एन एक्सेप्शनल केस...कोलाइटिस।"

"तुम्हारे बॉस अपने को पूरी तरह सुरक्षित महसूस करते हैं ? तुम्हारी हेल्थ कितनी बढ़िया है ! तुम्हें काले लबादे वाला आदमी परेशान नहीं करता ?"

"सरकिट हाउस में स्वास्थ्य मंत्री का आगमन हुआ है।" चपरासी बोला—"अखबार में सब लिखा है।"

"क्या अखबारों का विश्वास करना चाहिए ?" नौजवान ने पूछा।

"आइ एम नो मोर इंटेरेस्टेड इन ह्वॉट लेडी मैकवेथ इज़ अप टु नेक्स्ट।"

"अख़बार एक रंडी है !"

अखबार की हर बात विज्ञापन होती है। मैंने बेकारी के दिनों में अखबार बेचने का धंधा किया है। अख़बारों में मेरा नाम छपता था। मैं स्पोर्ट्समैन हूँ।"

"सब ओवर-पॉपुलेशन की वजह से !" चपरासी नर्स को बता रहा था—"इनके बाप-दादों को कंट्रासेप्टिव्स की ख़बर होती, तो ये कीड़े-मकोड़ों की फौज़ तैयार न होती ! अब समाजवाद क्या कर सकता है ? इन सबको फ्रंट पर भेज देना चाहिए ! दुश्मन की इतनी गोलियाँ तो खर्च होंगी और "हिंदुस्तान का भार उतरेगा! इन सड़े-गले लोगों से देश को क्या फ़ायदा!"

"उम्मीद है, अगले महीने तक पापा मुक्ति पा जायेंगे। ही इज़ सफ़रिंग सो टेरिविल ! तब मैं अपनी पूरी तनख्वाह अपने ऊपर खर्च कर सकूँगी। जस्ट थिंक, ही इज़ सेवेंटी एट ! और रोज़ शराब पीते हैं। कहते हैं, शराब के लिए कहीं से पैसे ला...कहीं से। यह बाप का धरम है !" नर्स संजीदा हो गई।

"बाप के मरने के बाद तू मेरे छोटे भाई से शादी कर लेना !" चपरासी मस्ती से हँसने लगा।

"डॉक्टर मीटिंग में क्या कर रहा होगा ?" कोलाइटिस वाले ने पूछा।

"पार्टी में.. वह मंत्री के साथ शराब पीने के बाद भुना हुआ मुर्ग़ और तंदूरी खा रहा होगा...सरकारी ख़र्ज़े पर। भोजन के बाद वह अख़बार वालों को बुलायेगा और 'देश के हित में' अपना टाइप किया हुआ वक्तव्य दे देगा। और लोग विश्वास कर लेंगे।"

"हम आस्थावान लोग हैं।"

"वी आर डीपली स्पिरिचुअल।"

"वी आर टु बी ए बिट सिनिकल।"

"क्यों साहब, आप मेहरबानी करके बतायेंगे कि डाक्टर साहब कब तक पधारेंगे ?" नौजवान ने चपरासी से पूछा।

"तुम कौन हो जी ?" चपरासी बिगड़ खड़ा हुआ।

"मैं अपने शरीर का एक बोतल ख़ून बेचना चाहता हूँ। मुझे नौकरी की ज़रूरत है।"

"मैं क़लमधारी बुद्धिजीवी हूँ। समाज की ज़िम्मेदारी है कि मैं जीवित रहूँ।" मैंने बताया।

"मैं अल्पवेतनभोगी प्राइवेट सेक्टर का कर्मचारी।" कोलाइटिस वाले ने कहा।

"मैं अवकाश प्राप्त...सरकार के पास मेरा आठ हज़ार रुपया प्राविडेंट फंड का जमा है, जो मुझे मिल नहीं रहा। मैं सरकार से मुक़दमा लड़ने के लिए स्वस्थ रहना चाहता हूँ। मेरा इरादा संविधान-सम्मत है।"

चपरासी अकड़ गया—"आप लोग अपने आपको क्या समझते हैं?"

हम लोग घबरा कर एक-दूसरे की शक्लें देखने लगे।

"इंदिरा गांधी?" चपरासी कड़का।

"अगले सप्ताह मेरा इंटरव्यू है।" नौजवान ने कहा। वह निराश दिख रहा था।

"युवा तुर्क?"

"आई वांटेड टु एसर्टेन इफ़ इट रियली इज़ ए फ़िनॉमॅनन।" मैंने कहा।

"चारू मज़ूमदार?"

"मुझे सर्टिफ़िकेट चाहिए कि मेरा केस जेनुइन और एक्सेप्शनल वन है।" कोलाइटिस वाला बोला।

"अ० बि० वाजपेयी?"

"मुझे एक जर्मीसाइड चाहिए।" रिटायर्ड आफ़िस सुपरिंटेंडेंट-नुमा व्यक्ति ने कहा—"मेरी गिर्द की हवा में कीटाणु पैदा हो गये हैं।"

"पता है, ये जनता का सरकारी अस्पताल है?" चपरासी ने रुतबे से कहा—"यदि आपको कोई शिकायत है, तो उसके लिए तरीक़े हैं। विधान-सभा में सवाल उठाइये, चौराहे पर खड़े होकर भाषण कीजिये, अख़बार में लेख निकालिए, अनशन कीजिए। जल कर मर जाइये। आपको पता है, हिन्दुस्तान में समाजवाद आ रहा है!" फिर वह नर्स की तरफ़ मुख़ातिब हो कर बोला—"बारह बज रहे हैं, चला जाये।"

हम चारों एक-दूसरे के चेहरे भाँपते हुए उठ खड़े हुए।

"अब?" नौजवान ने कहा।

"कल फिर आना पड़ेगा।" कोलाइटिस वाले ने कहा।

"हालाँकि कोई गारंटी नहीं कि कल भी हमें निराश नहीं होना पड़ेगा!" रिटायर्ड आफ़िस सुपरिंटेंडेंट-नुमा व्यक्ति ने कहा।

"इसके अलावा कोई चारा नहीं कि हम प्रतीक्षा करें और निराश होते रहें!" मैंने कहा।

फिर हम चुप होकर केबिन के बंद किवाड़ों की तरफ़ देखते रहे।

"चला जाये !" हम चारों के मुँह से एक साथ निकला।

पर कोई अपनी जगह से हिला नहीं। बाहर चिलचिलाते मैदान में सुइयाँ बरस रही थीं। अंधड़ के झोंके आते और बंद केबिन के किवाड़ों को ठेल कर चले जाते। फ़र्श पर धूल की एक और परत जम जाती। एक-दूसरे के ख़ाली चेहरों को ख़ाली-ख़ाली नज़रों से घूरते हुए हम अब भी उसी तरह खड़े थे।

●

जन्म : १ अप्रैल, १६३७

जन्म स्थान : मऊरानीपुर (झांसी), उ० प्र०

शिक्षा : इलाहाबाद विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र में एम० ए०

'महापुरुषों की वापसी' पहला कहानी-संग्रह है। आपकी कहानियाँ 'सारिका', 'धर्मयुग' आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में स्थान पाती रही हैं। 'नई कहानी' के बाद के सशक्त कहानी-आंदोलन 'समान्तर कहानी' के आप विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। देहात में कुछ खेती है और कुछ पैतृक-जायदाद भी। बस यही आपका साधन समझ लेना चाहिये। दूसरा कहानी-संग्रह 'अजनबी आकाश' प्रकाशन के लिए तैयार है।



গ্রন্থালয়